सम्पादकीय वक्तव्य

प्रस्तुत कविता-संग्रह बिल्कुल नये दृष्टिकोण से तैयार किया गया है। अब तक के संग्रहों में काल-क्रमानुसार कवियों को स्थान दिया जाता था, जिससे संग्रह में अनेक ऐसे कवियों का समावेश हो जाता था, जिनकी कवितायें पाठकों तथा विद्यार्थियों दोनों को बोझिल हो जाती थीं।

यह संग्रह विद्यार्थियों में वास्तविक रूप से काव्य के प्रति रुझान उत्पन्न करने के लिए किया गया है। प्राचीन सभी कवियों का अध्ययन करने की अपेक्षा कुछ चुने हुए, सर्वाधिक लोकप्रिय, कवियों का अध्ययन अधिक लाभदायक सिद्ध होगा। उनमें से एक कवि का विशेष अध्ययन तो और भी उपयोगी और आवश्यक है।

'काव्य-मंजरी' को हमने तीन विभागों में विभाजित कर दिया है। प्रथम भाग में तुलसीदास जी विस्तृत जीवनचरित्र, रामायण का महत्व, मानस-सार तथा उनके अन्य ग्रन्थों के कुछ उद्धरण दिये गये हैं। 'मानस-सार में रामायण का सम्पूर्ण कथानक तो आ ही गया है, तुलसीदास जी की कविता की सारी विशेषता भी उसमें निहित है। हमारा पूरा विश्वास है कि मानस-सार के अध्ययन से विद्यार्थी तुलसीदास जी की सम्पूर्ण

विशेषताओं से परिचित हो जावेंगे। पदों और दोहों को पढ़ने से तुलसीदास की रही-सही विशेषता भी विद्यार्थियों के सामने आ जायगी।

दूसरे भाग में हमने उन पाँच प्राचीन कवियों की कवितायें दी हैं, जिनका अध्ययन मेट्रिकुलेशन के लिए अनिवार्य हो जाता है। इन पाँच कवियों की कविताओं से हिंदी-काव्य के क्रमिक विकास पर भी प्रकाश पड़ता है और वे विद्यार्थियों के हृदय में काव्यानुराग भी उत्पन्न करेंगी।

तीसरे भाग में आधुनिक उन बारह कवियों की कवितायें संकलित की गई हैं जो सचमुच विद्यार्थियों के लिए ग्राह्य हैं। हमने आधुनिक काव्य-धारा के सभी स्वरूप उपस्थित करने के साथ-साथ इस बात का सबसे अधिक ध्यान रखा है कि संग्रह में वे ही कवितायें दी जावें, जो सहज ही विद्यार्थियों के मन-प्राणों पर उतर सकें। वे सचमुच कविता-पठन में एक स्वर्गीय आनन्द का अनुभव करें। यह परम हर्ष की बात है कि आधुनिक बारह कवियों में चार हमारे प्रान्त के ही हैं।

यह संग्रह विशेष रूप से विद्यार्थियों के लिए तैयार किया गया है अतएव हिंदी के अनेक प्राचीन और नवीन कवियों को छोड़ देना पड़ा है।

प्रत्येक कवि के परिचय में महत्वपूर्ण ज्ञातव्य बातों के साथ साथ उसकी काव्य विशेषता तथा तुलनात्मक काव्य-विवेचन भी दिया गया है। इस संग्रह की अपनी विशेषता है। परिशिष्ट

में रस-अलंकार और छन्दों का संक्षिप्त विवेचन है। रस, अलंकार और छन्दों के अधिकांश उदाहरण हमने प्रस्तुत संग्रह की कविताओं में से ही दिये हैं, जिससे विषय को समझने में विद्यार्थियों को काफी सुविधा होगी।

प्रस्तुत संग्रह में मुझे परम आदरणीय श्री पदुमलाल पुन्नालाल जी बख्शी का दिशा-दर्शन और स्पेंस ट्रेनिंग कॉलेज के प्रोफेसर जगदीश प्रसाद जी व्यास, एम० ए० बी० टी० का सक्रिय सहयोग प्राप्त हुआ है, जिनका मैं हृदय से आभारी हूँ।

जिन स्वर्गीय और वर्तमान कवियों की कवितायें प्रस्तुत संग्रह में दी गई हैं उनके हम चिरऋणी हैं।

प्रस्तावना

हिंदी साहित्य का इतिहास कुछ युगों मे स्पष्ट रूप से विभक्त किया जा सकता है। चन्द हिंदी के आदि कवि माने जाते हैं। उस युग में, देश में क्षात्र-धर्म चैतन्य था। इसी भाव को प्रबुद्ध रखने के लिए लौकिक साहित्य में वीर-गाथाओं की आवश्यकता थी। उन दिनों क्षत्रियों में शौर्य था, साहस था, विश्वास था, सरलता थी, उदारता थी। पर उनमें दूरदर्शिता नहीं थी। वे युद्ध में प्राण देना जानते थे, पर छल से विजय प्राप्त कर लेना उन्हें अभीष्ट न था। प्रतिज्ञा-पालन, आत्म-मर्यादा, स्वाधीनता और कुल-गौरव की रक्षा करना, यही उनका एकमात्र धर्म था। युद्ध उनका व्यवसाय था और युद्ध-स्थल ही उनके लिए क्रीड़ा-स्थल था। ऐसे लोगों के लिए जो काव्य लिखे गए, उनमें कला का चातुर्य्य नहीं है। उनके छन्दों में है क्षिप्रगति, शब्दों में है भेरी-रव और भावों में है रणोल्लास। चन्द कवि के बाद हिंदी में वीर-गाथाओं के लिए उन्हीं की भाषा और शैली को चारणों ने अपना लिया।

पृथ्वीराज के पतन के बाद हिंदू-साम्राज्य तो छिन्न-भिन्न हो गया पर भारतवर्ष के सामाजिक जीवन में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। उन दिनो भारत में स्मार्त धर्म का प्राबल्य था।

हिंदू-धर्म की सभी व्यवस्थाएँ संस्कृत में थीं। जन-साधारण से उनका जरा भी सम्पर्क न था। उनके एकमात्र उपदेशक ब्राह्मण थे। धार्मिक कृत्यों के आडम्बर में सदाचार का लोप हो गया था। शुष्क तर्क के जाल में भक्ति का यथार्थ भाव विलीन हो गया था। कृत्रिम आचार-व्यवहारों की ही प्रबलता थी। जाति-भेद खूब बढ़ गया था। मुसलमानों के संघर्षों से भारतवर्ष में एक नया आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। उस आन्दोलन के प्रवर्तक हिंदू साधक और मुसलमान फकीर दोनों थे। जब विद्वान लोग अपनी मनस् तुष्टि के लिये दर्शन-शास्त्र की जटिल व्याख्याएँ कर रहे थे, तब इन साधकों ने सर्वसाधारण की भाषा में प्रेम की व्याख्या की। ये लोग निर्गुण और निराकार ब्रह्म के उपासक अवश्य थे, पर इन्होंने प्रेम-मार्ग से ही भगवान को प्राप्त करने का प्रयास किया। संसार में वे भगवान् की लीलाओं का ही दर्शन करते थे। पार्थिव वैभव को वे लोग तुच्छ समझते थे। मुसलमान फकीरों ने जो आख्यान-काव्य लिखे हैं उनमें भी लौकिक प्रेम-द्वारा ही परमात्मा के प्रेम की प्राप्ति संभव बतलाई गई है। इन सन्तों का धर्म-मत बहुत उदार है, उसमें जरा भी संकीर्णता नहीं है। जाति-भेद, आचार-व्यवहार की कृत्रिमता, मूर्ति-पूजा तथा तीर्थ-यात्रा को उन्होंने सर्वथा त्याज्य समझा। संसार की अनित्यता तथा शील और वैराग्य की महिमा बतलाई गई। स्मृति-शास्त्रों के अनुशासनों को त्याज्य मानकर एकमात्र गुरुभक्ति की श्रेष्ठता पर जोर दिया गया। इन साधकों की साधना

भाव और सौन्दर्य-प्रेम के पूर्ण थी। पर ये सन्त असीम और निराकार के ध्यान में मग्न होकर, रूप और रस से दूर हट गए थे। भक्तों का मन जैसे भाव के लिये उत्सुक रहता है, वैसे ही रूप के लिए भी व्याकुल रहता है। इसीलिए वैष्णवकवियों ने भगवान के सगुण रूप की आराधना प्रारम्भ की। मनुष्यत्व में देवत्व और देवत्व में मनुष्यत्व के भाव आरोपित हुए। कबीर ने निराकार राम तुलसीदास के साकार राम हुए। उसी समय वल्लभाचार्य और भक्त-शिरोमणि विठ्ठलनाथ के उपदेशामृत से व्रज-धाम मे मानो रस का सागर उमड़ आया। व्रज-साहित्य के प्रधान नायक हैं श्रीकृष्ण जो प्रेम और सौन्दर्य के आगार हैं। सन्तों के विवेक और वैराग्य का स्थान प्रेम और अनुराग ने लिया। विवेक लोक-मर्यादा की रक्षा करता है और प्रेम उस मर्यादा का अतिक्रमण कर जाता है। वैराग्य का लक्ष्य ज्ञान है और अनुराग ज्ञान का तिरस्कार करता है। विशुद्ध प्रेम लोक-मर्यादा का उल्लंघन कर और लोक-निन्दा को ग्रहण कर अपने मे ही सार्थकता प्राप्त करता है। व्रज-साहित्य मे गोपियों ने उद्धव के ज्ञानोपदेश का जो उत्तर दिया है, वह मानों सन्तों की ज्ञान-गाथा का भी उत्तर है।

उसके बाद हिन्दी के कवि राजाओं और श्रीमानों के द्वारा विशेष आदृत और पुरस्कृत होने पर, उन्हीं की मनस्तुष्टि के लिए रस-साहित्य का निर्माण करने लगे। केशवदास से लेकर पद्माकर तक जितने कवि हुए, उन सबने एक ही प्रकार का

साहित्य निर्मित किया। उसमें कला का चमत्कार है और कल्पना का साम्राज्य। यथार्थ जगत से दूर रह कर उन कवियों ने अपनी कल्पना-द्वारा एक भाव-लोक का निर्माण कर उसी में विहार किया।

अंग्रेजों के आगमन के बाद भारतवर्ष में पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव से एक नवयुग का प्रादुर्भाव हुआ। हिन्दी-साहित्य में भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी नवयुग के प्रवर्तक माने जाते है। उन्होंने हिन्दी में गद्य-साहित्य का नव निर्माण किया; पर कविता के क्षेत्र उन्होंने व्रज-साहित्य के ही आदर्श को स्वीकार किया। आधुनिक युग की विशेषता से युक्त काव्य-साहित्य के जन्मदाता अयोध्यासिंह उपाध्याय और मैथलीशरण गुप्त कहे जा सकते हैं। इन्होंने लोगों का ध्यान भाव-जगत से हटा कर यथार्थ जगत की ओर आकृष्ट किया। मध्य-युग की कल्पित नायक-नायिकाओं की प्रेम-लीला का वर्णन न कर इन्होंने पाठको के हृदय मे लोक-सेवा, स्वदेश-प्रेम और अन्य उच्चभाव जाग्रत करने का प्रयत्न किया। 'प्रिय-प्रवास' की राधा वैष्णवों की राधा नहीं और न 'साकेत' की सीता तुलसीदास की सीता है। इन दोनों में अति मानवीय नहीं मानवीय भावों की प्रधानता है।

हिन्दी-साहित्य के लिये आधुनिक युग परिवर्तन काल है। गत पच्चीस वर्षों के भीतर हिन्दी-साहित्य में नये-नये आदर्श स्थापित हुए हैं। हिन्दी के कवि नवीनता के लिये व्यग्र हैं। जयशंकर प्रसाद, माखनलाल चतुर्वेदी, निराला, पन्त,

सुभद्राकुमारी चौहान और महादेवी वर्मा आदि कवि नवयुग के प्रवर्त्तक हैं। इनकी रचनाओं ने हिंदी-साहित्य की काव्य-धारा को परिवर्तित अवश्य कर दिया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अब मनुष्य ही एकमात्र कवित्व-कला का नायक रह गया है, अपने परिमित स्वरूप में नहीं किंतु अपने सम्पूर्ण में। अब किसान मजदूर, कैदी और दरिद्र भी कविता के लिये उतने ही उपयुक्त पात्र हैं जितने प्राचीन-साहित्य के धीरोदात्त नायक।

—o:—

विषय-सूची

संख्या विषय | पृष्ठ

[प्रथम भाग]

[द्वितीय भाग]

[तृतीय भाग]

प्रथम भाग

गोस्वामी तुलसीदास

गोस्वामी तुलसीदास

जन्म सवत् १५५५] [मृत्यु सवत् १६८०

कोई मनुष्य मुद्राओं को अपना वित्त बतलाता है, कोई अपने बन्धु-बान्धवों को ही अपनी सम्पत्ति मान कर अत्यन्त प्रसन्न होता है। किन्तु किसी राष्ट्र अथवा जाति की सम्पत्ति के विषय में कोई क्या कह सकता है? यथार्थ में देश की सम्पत्ति वे ही मनुष्य-जाति रूपी सागर में से मथ कर निकाले हुए उज्ज्वल रत्न हैं, जो अपनी जीवन-ज्योति से देश के मोहान्धकार का विनाश करते हैं।

वसुन्धरा में अगणित वीर, साहसी, पंडित और कवि उत्पन्न हो चुके हैं; जिन्होंने अपनी प्रतिभा से अक्षय कीर्ति अर्जित की है। भारतवर्ष भी स्वतः के आध्यात्म-विद्यावादियों, वीरों, भक्तों और कवियों का गर्व कर सकता है। कवियों में कवि-सम्राट् तुलसीदास अग्रगण्य हैं।

प्रतिभाशाली महाकवि अपने समय का प्रतिनिधि होता है। जन-समाज के प्रतिनिधि के समान वह भी समाज की आवश्यकताएँ बतलाता है, कवि कल्पना-बल से लोगों के सामने एक शब्द-चित्र उपस्थित करता है। जिसमें युग की छाप रहती है। वह चित्र इतना चित्ताकर्षक होता है कि उसकी ओर सभी स्वयं आकृष्ट हो जाते हैं। उस समय का स्मरण कीजिये, जब निर्दयता चरम सीमा पर पहुँच गई थी—अहंकार की बात तो क्या, कड़ी बात कहने पर भी प्राणदण्ड की आज्ञा दी जाती थी। लोग मोहान्धकार में में डूबे हुए थे। उसी समय भगवान्

बुद्ध ने अवतार लिया। भगवान् बुद्ध ने जातक कथाओं और उपदेशों के रूप में महान् काव्य की सृष्टि की। अनायास, बिना किसी के कहे, उस काव्य ने संसार में नया युग उत्पन्न कर दिया। इस प्रकार जब-जब इतिहास की धारा पलटी तब-तब कोई न कोई विश्व-विख्यात महापुरुष अवश्य उत्पन्न हुआ और उसने उस जर्जर धर्म और समाज की रक्षा की। तुलसीदास ने स्वयं कहा है :—

"जब-जब होय धर्म की हानी, बाढ़े असुर अधम अभिमानी।
तब-तब प्रभु धरि मनुज सरीरा, हरहिं सदा भव सज्जन पीरा।

कवि के विषय में कुछ कहने के पूर्व, उसके जन्म-काल, कुल, पितृव्य आदि का विवेचन अत्यावश्यक है। जिस समय देश में अशान्ति फैली हुई थी, धर्म की नौका अज्ञान-सागर में डगमगा रही थी, मूर्खता अपना विस्तृत साम्राज्य फैलाये बैठी थी। विद्या विवाद के लिये समझी जाती थी। धन का उपयोग मद के लिये और शक्ति का उपयोग पीड़ा के लिये किया जाता था। क्या ऐसी दशा में कभी कोई बुद्धिमान् देश और समाज के कल्याण की आशा कर सकता था? इधर इस प्रकार की दयनीय दशा थी, उधर मुगल बादशाह अपना दबदबा दिखा रहे थे। हिन्दुत्व घृणा की दृष्टि से देखा जा रहा था। उस समय विचारवानों का हृदय कांप उठा और हिन्दुत्व के विनाश की भारी आशंका उनके हृदय में दौड़ने लगी।

इसी समय महाकवि तुलसीदास का जन्म हुआ। तुलसीदास का जन्म-समय कहीं लिखा नहीं है, परन्तु बहुमत से सम्वत् १५५५ ही इनका जन्म-काल माना जाता है। इसके विपरीत शिवसिंह सरोज में इनका जन्म-

समय संवत् १५८३ माना गया है। परन्तु इनके एक शिष्य ने भी अपने मानस-मयङ्क नामक ग्रंथ में इनका जन्म-समय सं० १५५५ ही माना है।

इनके जन्म-स्थान के सम्बन्ध में भी कहीं कोई लिखित प्रमाण नहीं मिलता। कोई कहता है इनका जन्म तारी में हुआ, कोई हस्थनापुर, कोई चित्रकूट के पास हाजीपुर और कोई युक्तप्रदेशान्तर्गत राजापुर नामक ग्राम को ही इनका जन्म-स्थान बतलाता है।

इनके पूर्वज चित्रकूट के पास किसी स्थान में रहते थे। महावीर जी ने स्वप्न में दर्शन दे उनसे कहा कि तुम बांदा जिले के राजापुर नामक ग्राम में बसो। वहाँ तुम्हारे एक पुत्र-रत्न उत्पन्न होगा, जो अमर कीर्त्ति-स्तम्भ खड़ा कर जावेगा। इसी स्वप्न की प्रेरणा से इनके पूर्वज राजापुर गये और वहीं तुलसीदास जी का जन्म हुआ। राजापुर में आज भी इनकी कुटी और मन्दिर आदि बने हैं।

गोस्वामी जी ने स्पष्ट रूप से कहीं भी अपने माता-पिता का उल्लेख नहीं किया। पर यह सब लोग मानते हैं कि इनके पिता का नाम आत्माराम दुबे था तथा माता का नाम हुलसी देवी था।

सुरतिय, नरतिय, नागतिय, सब चाहत अस होय।
गोद लिये हुलसी फिरै, तुलसी सो सुत होय॥

इस दोहे का उत्तरांश रहीम खान-खाना का माना जाता है और शेष गोस्वामी तुलसीदास का। कहते हैं पहिले इनका नाम 'रामबोला' था और गृह-त्याग करने पर इनका नाम तुलसीदास पड़ा। डा० ग्रिअर्सन ने अपने तीन दोहों में इन का वंश-परिचय दिया है। वे दोहे इस प्रकार हैं:—

दूबे आत्माराम है, पिता नाम जग जान।
माता हुलसी कहत सब, तुलसी के सनमान॥
प्रह्लाद-उधारक नाम है, गुरु का सुनिये साध।
प्रगट नाम नहीं कहत जो, कहत होय अपराध॥
दीनबन्धु पाठक कहत, ससुर नाम सब कोय।
रत्नावलि तिय नाम है, सुत तारक गत होय॥

इनसे इनके माता-पिता और सम्बन्धियों का परिचय मिलता है। कई लोग कहते हैं कि ये मूल नक्षत्र में उत्पन्न हुए। इससे ज्योतिष के कथनानुसार अपनी मृत्यु के भय से विचलित होकर माता ने इनका परित्याग कर दिया था। कवि ने अपना बालकपन घर में व्यतीत नहीं किया। उन्होंने कहा भी है:—

तनु तज्यो कुटिल कीर, ज्यों तज्यो मात-पिता हूँ।

ये बाल्यावस्था में माता-पिता द्वारा परित्यक्त कर दिये गये थे। नरहरिदास के आश्रम में पाले-पोसे गये और फिर इनका विवाह आदि हुआ। गुरु का उल्लेख इन्होंने रामायण के प्रारम्भ में किया है:—

बंदऊ गुरु पद-कंज, कृपासिंधु नर रूप हरि।
महामोहतम पुंज, जासु वचन रवि कर निकर॥

गुरु के आश्रम में रहकर ये रामभक्ति में रँग गये थे। इन्होंने सबसे पहिले राम-गुण-गाथा इन्हीं नरहरिदास से सुनी जैसा कवि ने कहा भी है:—

मैं पुनि निज गुरुसन सुनी, कथा सो सूकर खेत।
समझी नहीं तब बालपन, तब अति रहेउँ अचेत॥

सब लोग मानते हैं कि इनका विवाह दीन-बन्धु पाठक की कन्या रत्नावली से हुआ था, जो अत्यन्त सुन्दरी थी।

तुलसीदासजी रत्नावली के प्रेम में अत्यधिक आसक्त थे। रत्नावली पर इनका इतना अधिक अनुराग बढ़ा कि ये उससे एक क्षण के लिये भी विलग नहीं होना चाहते थे। एक बार रत्नावली अपने भाई के साथ अपने पिता के यहाँ चली गई। गोस्वामी जी जब स्नान-ध्यान से लौटे, तब उन्हे यह समाचार विदित हुआ। बस क्या था, जैसे खड़े थे वैसे ही रत्नावली के पास चल खड़े हुए। ये इतने प्रेमोन्मत्त थे कि इनको यह भी स्मरण न रहा कि मैं किस प्रकार और कौन से रास्ते से जा रहा हूँ। रात्रि का समय था गोस्वामीजी अचानक रत्नावली के पास जा पहुँचे। रत्नावली इन्हे देखते ही अत्यन्त आश्चर्यान्वित हुई। थोड़ी देर तक सोचने के पश्चात् वह बड़ी गम्भीरतापूर्वक बोली :—

लाज न लागत आपको, दौरे आयेहु साथ।
धिक-धिक ऐसे प्रेम को, कहा कहहु मैं नाथ॥
अस्थि चर्ममय देह मम, तामे जैसी प्रीति।
तैसी जो श्रीराम महँ, होत न तो भवभीत॥

रत्नावली का इतना कहना था कि इनके हृदय मे एक नवीन ज्योति उत्पन्न हुई और भगवत् भक्ति का प्रादुर्भाव हुआ। रत्नावली को सदा के लिए तिलाञ्जलि देकर गोस्वामी जी वहाँ से चल पड़े। रत्नावली पाषाण-प्रतिमा की तरह अचल खड़ी रही—उससे कुछ कहते न बना। वह किंकर्त्तव्यविमूढ हो गई। गोस्वामी जी वहाँ से चल कर काशी पहुँचे। यहीं पर इन्होंने विद्याध्ययन किया और इसके पश्चात् कुछ

समय तक तीर्थाटन करते रहे। गृह छोड़ने के बाद, ऐसा कहा जाता है कि रत्नावली ने यह दोहा गोस्वामी जी को लिख भेजा :—

कटि की खीनी कनक सी, रहति सखिन सग सोय।
मोहि फटे कौ डर नहीं, अनत कटे डर होय॥

इसके बाद उत्तर में गोस्वामी जी ने लिखा :—

कटे एक रघुनाथ सग, बाँधि जटा सिर केश।
हम तो चाखा प्रेम-रस, पतिनी के उपदेश॥

वृद्धावस्था में एक समय तुलसीदास भ्रमण करते हुए अपने ससुर के यहाँ अपरिचित दशा मे ठहर गये। रत्नावली ने इन्हे पहचान लिया और स्वयं साथ चलने का आग्रह किया। गोस्वामी जी ने उसे साथ लेना अस्वीकार कर दिया। तब उसने कहा :—

खरिया खरी कपूर लौं, उचित न, पिय! तिय त्याग।
कै खरिया मोहि मोल ले, अचल करहु अनुराग॥

यह सुनते ही तुलसीदास ने अपने झोले की सब वस्तुएँ ब्राह्मणों को बाँट दी।

गोस्वामी जी किसी एक स्थान में बहुत समय तक नहीं रहे—यहाँ वहाँ विचरण करते ही रहे। एक बार ये वृन्दावन में कृष्ण-मन्दिर में गये। वहाँ इन्होंने कृष्ण-मूर्त्ति देख यह दोहा कहा :—

कहा कहौं छवि आपकी, भले बने हो नाथ।
तुलसी मस्तक तब नवै, धनुष बाण जब हाथ॥

कहते हैं, तुलसीदास ने जिस मूर्त्ति को अपना आराध्य माना था, वही मूर्त्ति उनके सामने प्रकट हुई। इन्होंने उसे प्रणाम किया। इस

प्रकार की बहुत सी दन्त कथाएं ऐसी हैं जिन पर लोगों का विश्वास नहीं होता।

गोस्वामी जी अधिक समय तक काशी में रहे। काशी मे अस्सी नदी के पास तुलसीघाट और उनकी कुटी जीर्णावस्था मे आज भी विद्यमान है। गोस्वामी जी इसके अतिरिक्त गोपाल-मन्दिर प्रह्लादघाट और सकट-मोचन आदि स्थानों में भी काशी मे रहते रहे हैं। सकट-मोचन में तो अभी तक उनके हाथ की स्थापित महावीर हनुमान की प्रतिमा विद्यमान है।

तुलसीदास जी नित्य प्रातः तथा सायंकाल गंगा के उस पार शौच करने जाते थे और लौट कर बचा हुआ पानी एक आम के पेड़ पर डाल देते थे। उस आम पर एक प्रेत रहता था। वह एक दिन तुलसीदास जी पर प्रसन्न हो पेड़ से प्रकट हुआ और बोला—कुछ मॉगो। ये राम-भक्ति में रगे हुए तो थे ही कहने लगे मुझे राम-दर्शन के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहिये। उसने कहा यह काम तो मेरी सामर्थ्य के बाहर है परन्तु अमुक मन्दिर में मैली कुचैली दशा में एक कोढ़ी मनुष्य बैठा रहता है। वे हनुमान हैं। उनके द्वारा तुम्हे राम-दर्शन होगे। तुलसीदास जी हनुमान जी के पीछे पड़ गये। हनुमान जी ने कहा—चित्रकूट मे तुम्हें राम-दर्शन होंगे। तुलसीदास चित्रकूट गये और इन्हें वहाँ राम-दर्शन हुए। इस सम्बन्ध में निम्न लिखित दोहा प्रसिद्ध है :—

चित्रकूट के घाट पर भई सन्तन की भीर।
तुलसीदास चन्दन घिसें तिलक देत रघुबीर॥

तुलसीदास जी बहुत समय तक चित्रकूट में रहे। इन्होंने अपना

अन्तिम जीवन काशी में ही व्यतीत किया और वहीं इनकी मृत्यु सम्वत् १६८० में हुई :—

संवत सोरह सौ असी, असी गंग के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो शरीर॥

तुलसीदास अपने समकालीन बहुत से विद्वानो से परिचित थे। जैसे रहीम खान-खाना, राजा टोडरमल, नन्ददास जी, नाभा जी, मीरा बाई आदि। ये विद्वान् भी तुलसीदास जी को आदर की दृष्टि से देखते और इनके साथ पूर्ण सहानुभूति रखते थे।

कहते हैं तुलसीदास जी का अन्तिम दोहा यह है :—

राम नाम जस बरनि कै भयो चहत अब मौन।
तुलसी के मुख दीजिये, सब ही तुलसी सौन॥

—:०:—

रामचरितमानस का महत्व

समस्त देशी भाषाओं में तुलसीकृत रामचरितमानस ही एक ऐसा काव्य ग्रंथ है, जिसने सर्वप्रथम लोक-शिक्षा के कार्य में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की। यही एक ग्रंथ है, जो भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, राज-नीति, गार्हस्थ-नीति इत्यादि सब प्रकार से विचार करने योग्य है।

रामचरित विषयक काव्यों में आध्यात्म रामायण और वाल्मीकीय रामायण मुख्य हैं। परन्तु तुलसीकृत रामायण में इन दोनों से एक विशेषता है और वह विशेषता सेव्य-सेवक भाव की है। भरत, लक्ष्मण सीता, हनुमान, इत्यादि रामभक्तों का जैसा स्वाभाविक चरित्र-चित्रण गोस्वामी तुलसीदास जी ने किया है, वैसा और किसी रामायण-कार से नहीं बन पड़ा। अपने भक्तों के प्रति श्री रामचन्द्र जी का जो प्रेम और कृतज्ञता तुलसीकृत रामायण में प्रकट हुई है, वह रामचरित सम्बन्धी किसी भी महाकाव्य में प्रकट नहीं हुई।

गोस्वामी जी साधु थे। नाना पुराण निगमागम के पंडित थे। अनन्य भगवद्-भक्त थे। उनकी उत्कट इच्छा थी कि सदाचार और भक्ति के द्वारा संसार का उद्धार हो। सब लोग भगवद्-भक्त और सच्चरित्र बनें। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर उन्होंने रामचरित-मानस की रचना की। उनका यह ग्रंथ माधुर्य्य, ओज और प्रसाद इन तीनों उत्कृष्ट काव्य-गुणों का आगार है।

रामचरितमानस हिन्दी भाषा-भाषियों के लिए सर्वस्व है। हिन्दू धर्म के आदर्शों की रक्षा इस महाकाव्य ने की। इसमें धर्मनीति, समाज-नीति और राजनीति का बड़ा सुन्दर समावेश है। एक विद्वान् का कथन है कि यदि कोई वसंत के पुष्प और शरद् ऋतु के फल पाने की अभिलाषा करे या वशीकरण की वस्तु देखना चाहे अथवा पृथ्वी और स्वर्ग एक ही स्थान में देखने की इच्छा करे तो वह तुलसीदास जी का रामचरित मानस पढ़े।

जिस समय हिंदू धर्म की नौका डगमगा रही थी और सम्भव था वह रसातल में डूब जाती, उस समय तुलसी दास जी ने अपने इस महान् काव्यग्रंथ से डूबती हुई नौका को बचा लिया। इसी का आश्रय पाकर करोड़ों मनुष्य धर्म पर आरूढ़ रहे। कवि अम्बादत्त जी ने अक्षरशः सत्य कहा है :—

धनिक भिखारिन की नर अरु नारिन की,
कूटकार वारिन की छाती सरसातो कौन ?
कहे कवि अम्बादत्त बूढ़े से बालन सों,
राम जस हल्लन सौं हिय हरसातो कौन ?
नये मतवारे मतवारन के कान काट,
कालि हूँ मे रीति-नीति-प्रीत बरसातौ कौन ?
होतो न जो तुलसी गुसाईं कविराज आज,
रामायण परम-पीयूष बरसातो कौन ॥

तुलसीदास जी ने सभी रसों के वर्णन में भक्ति-भाव को ही प्रधानता दी है। उनके शृंगार रस में भक्ति का समिश्रण होने से एक अपूर्व

कोमलता आ गई है। करुण रस में विषाद की एक गम्भीरता है। हास्य रस में भी वही गम्भीरता विद्यमान है। वीर, रौद्र, और वीभत्स रस में शान्ति की धारा वह गई है। युद्ध-स्थल में भी भगवान् का रूप लोकाभिराम है। युद्ध क्या है मानों वर्षा-काल में प्रकृति का विलास है। इस प्रकार गोस्वामीजी ने सर्वत्र शील, सेवा और संयम की ही प्रतिष्ठा की है। रामचरितमानस में वह शक्ति है जिसके कारण हिन्दू जाति की धार्मिक भावना सदैव जाग्रत बनी रही। मानस में नीति के उपदेश हैं ज्ञान की चर्चा है, धर्म की व्याख्या है और उन आदर्श चरित्रों का चित्रण है जिसका प्रभाव हिन्दू जाति के जीवन पर अक्षय है।

तुलसीदास जी ने रामचरित मानस की रचना अवधी भाषा में की है किन्तु उस पर ब्रजभाषा का प्रभाव भी प्रत्यक्ष है। भाषा का सौष्ठव और अलंकारों का चमत्कार देखते ही बनता है।

मानस-सार

जेहि सुमिरत सिधि होइ, गन-नायक करि-वर बदन।
करउ अनुग्रह सोइ, बुद्धि-रासि सुभगुन सदन॥
नील - सरोरुह - स्याम, तरुन अरुन वारिज-नयन।
करउ सो मम उर धाम, सदा छीर-सागर-सयन॥

अवधपुरी रघु-कुल-मनि राऊ। वेद विदित तेहि दसरथ नाऊँ॥
धरम-धुरंधर गुननिधि जानी। हृदय भगति मति सारँग-पानी॥

दो०—कौसिल्यादि नारि पिय, सब आचरन पुनीत।
पति-अनुकूल प्रेम दृढ़, हरि-पद-कमल विनीत॥

एक बार भूपति मन माहीं। भइ गलानि मोरे सुत नाहीं॥
गुरु-गृह गयउ तुरत महिपाला। चरन-लागि करि विनय विसाला॥
निजदुखसुखसबगुरुहिंसुनायऊ। कहिबसिष्ठबहुबिधिसमुझायऊ॥
धिरहु धीर होइहहिं सुत चारी। त्रिभु-वन-विदितभगत-भयहारी॥
सुख-जुतकछुक काल चलि-गयऊ। जेहि-प्रभुप्रगटसोअवसरभयऊ॥
तिथि नवमी मधुमास पुनीता। सुकुलपच्छ अभिजित हरि-प्रीता॥
मध्य दिवस अति सीत न घामा। पावन काल लोक विस्रामा॥
सीतल मंद सुरभि वह वाऊ। हरिषत सुर संतन्ह मन चाऊ॥

दो०—विप्र-धेनु-सुर-सन्त-हित, लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु, माया गुन गोपार॥

सुनि सिसु-रुदन परमप्रिय बानी। संभ्रम चलि आईं सब रानी ॥
हरषित जहँ तहँ धाईं दासी। आनँद मगन सकल पुर-बासी ॥
दसरथ पुत्र-जन्म सुनि काना। मानहु ब्रह्मानन्द समाना ॥
परम प्रेम मन पुलक सरीरा। चाहत उठन करत मति धीरा ॥
परमानन्द पूरि मन राजा। कहा बुलाइ बजावहु बाजा ॥
गुरु बसिष्ठ कहँ गयउ हँकारा। आए द्विजन सहित नृप-द्वारा ॥
अनुपम बालक देखिन्हि जाई। रूप-रासि गुन कहि न सिराई ॥

दो०—तब नन्दीमुख स्राद्ध करि, जात-करम सब कीन्ह।
हाटक धेनु बसन मनि, नृप बिप्रन्ह कहँ दीन्ह ॥

कैकय-सुता सुमित्रा दोऊ। सुन्दर सुत जनमत भइ ओऊ ॥
वोह सुख संपति समउ समाजा। कहि न सकइ सारद अहिराजा ॥
कछुक दिवस बीते एहि भाँती। जात न जानिय दिन अरु राती ॥
नाम-करन कर अवसर जानी। भूप बोलि पठये मुनि ग्यानी ॥
करि पूजा भूपति अस भाखा। धरिय नाम जो मुनि गुनि राखा ॥
इन्हके नाम अनेक अनूपा। मैं नृप कहब स्वमति अनुरूपा ॥
जो आनन्द सिन्धु सुखरासी। सीकर तें त्रै-लोक सुपासी ॥
सो सुख-धाम राम अस नामा। अखिल-लोक दायक बिस्रामा ॥
बिस्व-भरन पोषन कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई ॥
जाके सुमिरन ते रिपु-नासा। नाम सत्रुहन बेद प्रकासा ॥

दो०—लच्छन-धाम राम-प्रिय, सकल-जगत-आधार।
गुरु बसिष्ठ तेहि राखा, लच्छिमन नाम उदार ॥

बिस्वामित्र महामुनि ग्यानी। बसहिं बिपिन सुभ आस्रम जानी॥
जहँ जप जग्य जोग मुनि करहीं। अति मारीच सुबाहुहिं डरहीं॥
गाधितनय मन चिन्ता व्यापी। हरि बिनु मरिहि न निसिचर पापी॥
तब मुनिवर मन कीन्ह बिचारा। प्रभु अवतरेउ हरन महि-भारा॥

दो०—बहु बिधि करत मनोरथ, जात लागि नहि बार।
करि मज्जन सरजू-जल, गये भूप दरबार॥

मुनि-आगमन सुना जब राजा। मिलन गयउ लेइ बिप्रसमाजा॥
करि दंडवत मुनिहिं सनमानी। निज आसन बैठारेन्हि आनी॥
तब मन हरषि बचन कह राऊ। मुनि अस कृपा न कीन्हेहु काऊ॥
केहि-कारन आगमन तुम्हारा। कहहु सो करत न लाउब बारा॥
असुर-समूह सतावहि मोही। मैं जाचन आयउँ नृप तोही॥
अनुज समेत देहु रघुनाथा। निसिचर बध मैं होब सनाथा॥
अति आदर दोउ तनय बोलाए। हृदय लाइ बहु भाँति सिखाए॥
मेरे प्रान-नाथ सुत दोऊ। तुम मुनि पिता आन नहिं कोऊ॥

दो०—सौंपे भूपति रिपिहि सुत, बहुबिधि देइ असीस।
जननि भवन गये प्रभु, चले नाइ पद सीस॥

सो०—पुरुष-सिंह दोउ बीर, हरषि चले मुनि-भय-हरन।
कृपासिंधु मतिधीर, अखिल-बिस्वकारन-करन॥

चले जात मुनि दीन्हि देखाई। सुनि ताड़िका क्रोध करि धाई॥
एकहि बान प्रान हरि लीन्हा। दीन जानि तेहि निजपद दीन्हा॥
प्रात कहा मुनि सन रघुराई। निरभय जग्य करहु तुम्ह जाई॥
होम करन लागे मुनि भारी। आपु रहे मख की रखवारी॥

बिस्वामित्र महामुनि ग्यानी। बसहिं बिपिन सुभ आस्रम जानी ॥
जहँ जप जग्य जोग मुनि करहीं। अति मारीच सुबाहुहिं डरहीं ॥
गाधितनय मन चिन्ता व्यापी। हरि बिनु मरहिं न निसिचर पापी ॥
तब मुनिवर मन कीन्ह विचारा। प्रभु अवतरेउ हरन महि-भारा ॥

दो०—बहु विधि करत मनोरथ, जात लाग नहि वार।
करि मज्जन सरजू-जल, गये भूप दरबार ॥

मुनि-आगमन सुना जब राजा। मिलन गयउ लेइ विप्रसमाजा ॥
करि दंडवत मुनिहिं सनमानी। निज आसन बैठारेन्हि आनी ॥
तब मन हरपि बचन कह राऊ। मुनि अस कृपा न कीन्हेहु काऊ ॥
केहि-कारन आगमन तुम्हारा। कहहु सो करत न लाउब बारा ॥
असुर-समूह सतावहिं मोही। मैं जाचन आयउँ नृप तोही ॥
अनुज समेत देहु रघुनाथा। निसिचर बध मैं होब सनाथा ॥
अति आदर दोउ तनय बोलाए। हृदय लाइ बहु भाँति सिखाए ॥
मेरे प्रान-नाथ सुत दोऊ। तुम मुनि पिता आन नहिं कोऊ ॥

दो०—सौंपे भूपति रिषिहि सुत, बहु विधि देइ असीस।
जननि भवन गये प्रभु, चले नाइ पद सीस ॥

सो०—पुरुप-सिंह दोउ वीर, हरपि चले मुनि-भय-हरन।
कृपासिंधु मतिधीर, अखिल बिस्वकारन-करन ॥

चले जात मुनि दीन्ह देखाई। सुनि ताड़िका क्रोध करि धाई ॥
एकहि बान प्रान हरि लीन्हा। दीन जानि तेहिं निजपद दीन्हा ॥
प्रात कहा मुनि सन रघुराई। निरभय जग्य करहु तुम्ह जाई ॥
होम करन लागे मुनि भारी। आपु रहे मख की रखवारी ॥

सुनि मारीच निसाचर कोही। लै सहाय धावा मुनि द्रोही॥
बिनु फर बान राम तेहि मारा। सत जोजन गा सागर-पारा॥
पावकसर सुबाहु पुनि मारा। अनुज निसाचर कटक सँहारा॥
तहँ पुनि कछुक दिवस रघुराया। रहे कीन्ह बिप्रन्ह पर दाया॥
तब मुनि सादर कहा बुझाई। चरित एक प्रभु देखिय जाई॥
धनुष जग्य सुन रघुकुल नाथा। हरषि चले मुनिवर के साथा॥
चले राम लछिमन मुनिसंगा। गये जहाँ जगपावनि गंगा॥
गाधसूनु सब कथा सुनाई। जेहि प्रकार सुरसरि महि आई॥
तब प्रभु रिसिन्ह समेत नहाए। विविध दान महि देवन्ह पाए॥
हरषि चले मुनि वृन्द सहाया। बेगि बिदेह नगर नियराया॥
पुर रम्यता राम जब देखी। हरषे अनुज समेत बिसेखी॥

दो०—सुमन-बाटिका बाग बन, बिपुल बिहंग निवास।
फूलत फलत सुपल्लवत, सोहत पुर चहुँ पास॥

समय जानि गुरु-आयसु पाई। लेन प्रसून चले दोउ भाई॥
भूप-बाग वर देखेउ जाई। जहँ बसन्तरितु रही लुभाई॥
लागे बिटप मनोहर नाना। बरन बरन बरबेलि बिताना॥
नव पल्लव फल सुमन सुहाये। निज संपति सुररूख लजाए॥

दो०—बाग तड़ाग बिलोकि प्रभु, हरषे बन्धु समेत।
परम रम्य आराम यह, जो रामहिं सुख देत॥

तेहि अवसर सीता तहँ आई। गिरिजा-पूजन जननि पठाई॥
संग सखी सब सुभग सयानी। गावहिं गीत मनोहर बानी॥

एक सखी सिय-संग बिहाई। गई रही देखन फुलवाई॥
तेइ दोउ बंधु बिलोके जाई। प्रेमबिबस सीता पहि आई॥
दो०—तासु दसा देखी सखिन्ह, पुलक-गात जल नयन।
कहु कारन निज हरप कर, पूछहिं सब मृदुबयन॥
देखन बाग कुँअर दुइ आये। बय किसोर सब भाँति सुहाये॥
स्याम गौर किमि कहउँ बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी॥
तासु बचन अति सियहिं सुहाने। दरस लागि लोचन अकुलाने॥
चली अग्र करि प्रिय सखि सोई। प्रीति पुरातन लखइ न कोई॥
दो०—सुमरि सीय नारद बचन, उपजी प्रीति पुनीत।
चकित विलोकति सकल दिसि, जनु सिसु मृगी सभीत॥
कंकन-किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लषन सन राम हृदय गुनि॥
मानहुँ मदन दुँदुभी दीन्हीं। मनसा बिस्वविजय कहँ कीन्ही॥
अस कहि फिरिचितए तेहि ओरा। सियमुख ससि भये नयन चकोरा॥
भये बिलोचन चारु अचंचल। मनहुँ सकुचि निमि तजेउ दृगंचल॥
देखि सीय सोभा सुख पावा। हृदय सराहत बचनु न आवा॥
दो०—सिय सोभा हिय बरनि प्रभु, आपनि दसा बिचारि।
बोले सुचि मन अनुज सन, बचन समय अनुहारि॥
तात जनक-तनया यह सोई। धनुषजग्य जेहि कारन होई॥
पूजन गौरि सखी लेइ आई। करत प्रकास फिरइ फुलवाई॥
दो०—करत बतकही अनुज सन, मन सियरूप लुभान।
मुख-सरोज मकरन्द छबि, करइ मधुप इव पान॥

चितवति चकित चहूँदिसि सीता । कहँ गये नृप किसोर मन चिंता ॥
जहँ बिलोकि मृगसावक नयनी । जनु तहँ बरसि कमल सितस्रेनी ॥
लता-ओट तब सखिन्ह लखाये । स्यामल गौर किसोर सुहाये ॥
देखि रूप लोचन ललचाने । हरषे जनु निज निधि पहिचाने ॥
थके नयन रघुपति छवि देखे । पलकन्हिहू परहरीं निमेखे ॥
अधिक सनेह देह भइ भोरी । सरद ससिहि जनु चितव चकोरी ॥
लोचन-मग रामहिं उर आनी । दीन्हे पलक कपाट सयानी ॥
जब सिय सखिन्ह प्रेमबस जानीं । कहि न सकहिं कछु मनसकुचानीं ॥

दो०—लता-भवन ते प्रगट भये, तेहि अवसर दोउ भाइ ।
निकसे जनु जुग बिमल बिधु, जलद पटल बिलगाइ ॥
केहरि-कटि पट-पीत धर, सुखमा सील-निधान ।
देखि भानु कुल भूपनहिं, बिसरी सखिन्ह अपान ॥
सतानन्द - पद बंदि प्रभु, बैठे गुरु पहिं जाइ ।
चलहु तात मुनि कहेउ तब, पठवा जनक बुलाइ ॥

सीय स्वयंवर देखिय जाई । ईस काहि धौं देइ बड़ाई ॥
लषन कहा जस-भाजन सोई । नाथ कृपा तव जा पर होई ॥
पुनि मुनिबृंद समेत कृपाला । देखन चले धनुष - मखसाला ॥

दो०—कुञ्जर-मनि-कंठा कलित, उरन्हि तुलसिका माल ।
बृषभ-कंध केहरि-ठवनि, बल-निधि बाहु बिसाल ॥

कटि तूनीर पीत-पट बांधे । कर सर धनुष बाम बर कांधे ॥
पीत यग्य उपबीत सुहाये । नखसिख मंजु महाछबि छाये ॥

देखि लोग सब भए सुखारे। एकटक लोचन टरत न टारे॥
हरषे जनक देखि दोउ भाई। मुनि-पद-कमल गहे तब जाई॥
करि विनती निज कथा सुनाई। रंगअवनि सब मुनिहिं दिखाई॥

दो०—सब मंचन्ह तें मंच एक, सुन्दर विसद विसाल।
मुनि समेत दोउ बंधु तहँ, बैठारे महिपाल॥
जानि सुअवसर सीय तब, पठई जनक बोलाइ।
चतुर सखी सुन्दर सकल, सादर चलीं लेवाइ॥

सिय सोभा नहि जात बखानी। जगदम्बिका रूप-गुन-खानी॥
उपमा सकल मोहि लघु लागी। प्राकृत-नारि अंग अनुरागी॥
सीय बरनि तेहि उपमा देई। कुकवि- कहाइ अजसु को लेई॥
जौं पटतरिअ तीय महँ सीया। जग अस जुवति कहाँ कमनीया॥
गिरा मुखर तन अरध भवानी। रति अति दुखित अतनु पतिजानी॥
विष वारुनी बन्धु प्रिय जेही। कहिय रमासम किमि वैदेही॥
जौं छवि-सुधा-पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छप सोई॥
सोभा रजु मन्दर सिंगारू। मथै पानि-पंकज निज मारू॥

दो०—एहि विधि उपजै लच्छि जब, सुन्दरता सुखमूल।
तदपि सकोच समेत कवि, कहहिं सीय सम तूल॥

विस्वामित्र समय सुभ जानी। बोले अति सनेहमय बानी॥
उठहु राम भंजहु भव - चापा। मेटहु तात जनक-परितापा॥
सुनि गुरु बचन चरन सिरु नावा। हरष विषाद न कछु उर आवा॥

दो०—उदित उदय - गिरि - मंच पर, रघुवर बाल पतंग।
विकसे सन्त सरोज सब, हरषे लोचन भृंग॥

तब रामहि बिलोकि बैदेही। सभय हृदय बिनवति जेहि तेही॥
मनही मन मनाय अकुलानी। होहु प्रसन्न महेस भवानी॥
अहह तात दारुन हठ ठानी। समुझत नहिं कछु लाभ न हानी॥
कहँ धनु कुलिसहु चाहि कठोरा। कहँ स्यामल मृदुगात किसोरा॥
बिधि केहि भाँति धरउँ उर धीरा। सिरिस सुमन कन बेधिय हीरा॥
अति परिताप सीय मन माहीं। लव निमेष जुगसय सम जाहीं॥
दो०—प्रभुहिं चितइ पुनि चितइ महि, राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज - मीन-जुग, जनु बिधु मंडल डोल॥

गिरा अलिनि मुख पंकज रोकी। प्रगट न लाज निसा अवलोकी॥
सकुची व्याकुलता बड़ि जानी। धरि धीरज प्रतीत उर आनी॥
तन मन बचन मोर पन साँचा। रघुपति-पद-सरोज चितु राँचा॥
तौ भगवान सकल उर बासी। करिहहि मोहि रघुबर कै दासी॥
प्रभु-तन चितइ प्रेम-पन ठाना। कृपानिधान राम सब जाना॥
सियहि बिलोकि तकेउ धनु कैसे। चितव गरुड़ लघु व्यालहि जैसे॥
गुरुहि प्रनाम मनहिं मन कीन्हा। अति लाघव उठाइ धनु लीन्हा॥
दमकेउ दामिनि जिमि जब लयऊ। पुनि धनु नभमंडलसम भयऊ॥
लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े। काहु न लखा देख सब ठाढ़े॥
तेहि छन राम मध्य धनु तोरा। भरेउ भुवन धुनि घोर कठोरा॥
छंद—भरिभुवन घोर कठोर रव रबिबाजि तजि मारग चले।
चिकरहि दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरम कलमले॥
सुर असुर मुनिकर कान दीन्हे सकल बिकल बिचारहीं।
कोदंड खंडेउ राम तुलसी जयति बचन उचारहीं॥

सो०—संकर - चाप जहाज, सागर रघुवर - बाहु बल ।
बूड़े सकल समाज, चढ़ेउ जो प्रथमहि मोहबस ॥

दो०—देवन्ह दीन्हीं दुंदुभी, प्रभु पर वरषहिं फूल ।
हरषे पुर नर-नारि सब, मिटा मोह - मय - सूल ।

जनक कीन्ह कौसकहि प्रनामा, प्रभु प्रसाद धनु भंजेउ रामा ॥
मानि कृतकृत्य कीन्ह दुहुँ भाई । अब जो उचित सो कहिय गोसाँई ॥
कह मुनि सुनु नरनाथ प्रवीना । रहा बिवाह चाप - आधीना ॥
टूटत ही धनु भयेउ बिबाहू । सुर नर नाग विदित सब काहू ॥

दो०—तदपि जाइ तुम्ह करहु अब, जथा वंस व्यवहारु ।
बूझि बिप्र कुल वृद्धि गुरु, वेदविदित आचारु ॥

आये ब्याहि रामु घर जब तें । बसे अनन्द अवध सब तब ते ॥
प्रभु विवाह जस भयउ उछाहू । सकहिं न वरनि गिरा अहिनाहू ॥
जब ते राम ब्याह घर आये । नित नव मंगल मोद वधाये ॥
रिधि सिधि संपति नदी सुहाई । उमगि अवध अम्बुधि कहँ आई ॥
एक समय सब सहित समाजा । राजसभा रघुराज बिराजा ॥
सकल सुकृत मूरति नरनाहू । राम-सुजसु सुनि अतिहि उछाहू ॥
राय सुभाय मुकुर कर लीन्हा । बदनु बिलोकि मुकुट सम कीन्हा ॥
स्रवन समीप भये सित केसा । मनहुँ जरठपनु अस उपदेसा ॥
नृप जुवराज राम कहुँ देहू । जीवन जनम लाहु किन लेहू ॥

दो०—यह बिचारु उर आनि नृप, सुदिन सुअवसरु पाइ ।
प्रेम पुलकि तन मुदित मन, गुरुहि सुनायेउ जाइ ॥

कहइ भुआल सुनिय मुनिनायक । भये राम सबबिधि सबलायक ॥
नाथ रामु करियहि जुवराजू । कहिय कृपा करि करिय समाजू ॥
मोहि अछत यहु होइ उछाहू । लहहिं लोग सब लोचनलाहू ॥
पुनि न सोच तनु रहउ कि जाऊ । जेहि न होइ पाछे पछिताऊ ।
सुनि मुनि दसरथ वचन सुहाये । मँगल - मोद - मूल मन भाये ॥

दो०—बेगि बिलम्ब न करिय नृप, साजिय सबुइ समाजु ।
सुदिन सुमंगल तबहि जब, राम होहि जुबराजु ॥

मुदित महीपति मंदिर आये । सेवक सचिव सुमंत्र बुलाये ॥
कहि जयजीव सीस तिन्ह नाये । भूप सुमंगल वचन सुनाये ॥
प्रमुदित मोहि कहेउ गुरु आजू । रामहि राय देहु जुबराजू ॥

दो०—कहेउ भूप मुनिराज कर, जोइ जोइ आयसु होइ ।
रामराज अभिषेक हित, वेगि करहु सोइ सोइ ॥

कुबरी करी कुबलि कैकेई । कपट छुरी उर पाहन टेई ॥
लखै न रानि निकट दुख वैसे । चरै हरित तृन बलिपसु जैसे ॥
सुनत बात मृदु अंत कठोरी । देति मनहुँ मधु माहुर घोरी ॥
कहइ चेरि सुधि अहइ कि नाहीं । स्वामिनि कहिहु कथा मोहि पाहीं ॥
दुइ वरदान भूप सन थाती । माँगहु आज जुड़ावहु छाती ॥
सुतहि राज रामहि बनवासू । देहु लेहु सब सवति हुलासू ॥
भूपति राम-सपथ जब करई । तब माँगेहु जेहि वचन न टरई ॥
होइ अकाजु आजु निसि बीते । बचनु मोर प्रिय मानहु जी ते ॥

दो०—बड़ कुघातु करि पातकिनि, कहेसि कोपगृह जाहु ।
काजु सवाँरहु सजग सब, सहसा जनि पतियाहु ॥

साँझ समउ सानन्द नृपु, गयेउ कैकई गेह।
गवनु निठुरता निकट किय, जनु धरि देह सनेह ॥

कोपभवन सुनि सकुचेउ राऊ। भयबस अगहुड़ परइ न पाऊ ॥
सभय नरेसु प्रियापहि गयऊ। देखि दशा दुख दारुन भयऊ ॥
भूमि-सयन पट मोट पुराना। दिये डारि तन-भूषन नाना ॥
जाइ निकट नृपु कह मृदु बानी। प्रान-प्रिया केहि हेतु रिसानी ॥
अनहित तोर प्रिया केइ कीन्हा। केहि दुइ सिर केहि जमचहलीन्हा ॥
कहु केहि रंकहि करउँ नरेसू। कहु केहि नृपहि निकासउँ देसू ॥
जानसि मोर सुभाउ वरोरू। मन तव आनन चन्द चकोरू ॥
प्रिया प्रान सुत सरवसु मोरे। परिजन प्रजा सकल वस तोरे ॥
जो कछु कहउँ कपट करि तोहीं। भामिनि राम सपथ सत मोहीं ॥
विहँसि माँगु मन भावति बाता। भूषन सजहि मनोहर गाता ॥
घरी कुघरी समुझि जिय देखू। वेगि प्रिया परहरहिं कुवेखू ॥
भामिनि भयउ तोर मन भावा। घर-घर नगर अनन्द वधावा ॥
रामहिं देउँ कालि जुवराजू। सजहि सुलोचनि मंगल साजू ॥
कपट सनेह बढ़ाइ वहोरी। वोली विहँसि नयन मुहुँ मोरी ॥

दो०—माँगु माँगु पै कहहु पिय, कवहुँ न देहु न लेहु।
देन कहेहु बरदान दुइ, तेउ पावत सन्देहु ॥

जानेउँ मरमु राउ हँसि कहई। तुम्हहिं कोहाब परमप्रिय अहई ॥
थाती राखि न माँगेहुँ काऊ। विसरि गयेउ मोहि भोर सुभाऊ ॥
झूठेहु हमहि दोप जनि देहू। दुइ कै चारि माँगि मकु लेहु ॥

रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहु वरु वचन न जाई॥
नहिं असत्य-सम पातक-पुञ्जा। गिरिसम होहिं कि कोटिक गुञ्जा॥
बात दृढ़ाइ कुमति हँसि बोली। कुमति कुविहंग कुलह जनु खोली॥
सुनहु प्रानप्रिय भावत जी का। देहु एक वर भरतहिं टीका॥
माँगउँ दूसर वर कर जोरी। पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी॥
तापस बेस बिसेष उदासी। चौदह बरिस रामु वनवासी॥
सुनि मृदु वचन भूप हिय सोकू। ससिकरछुअतविकलजिमि कोकू॥
गयेउ सहमिनहिं कछु कहि आवा। जनु सचानवन झपटेउ लावा॥

दो०—कवने अवसर का भयउ, गयउँ नारि विस्वास।
जोग सिद्धि फल समय जिमि, जतिहि अविद्या नास॥

बिलपत नृपहिं भयउ भिनुसारा। बीना बेनु संख धुनि द्वारा॥

दो०—द्वार भीर सेवक सचिव, कहहि उदित रवि देखि।
जागे अजहुँ न अवधपति, कारनु कवन विसेखि॥

जाहु सुमंत्र जगावहु जाई। कीजिय काजु रजायसु पाई॥
गये सुमंत्रु तव राउर पाहीं। देखि भयावन जात डेराहीं॥
कहि जय जीव बैठ सिरनाई। देखि भूप गति गयउ सुखाई॥
सचिव सभीत सकइ नहिं पूछी। बोली असुभ भरी सुभ छूछी॥

दो०—परी न राजहि नींद निसि, हेतु जान जगदीस।
राम राम रटि भोर किय, कहइ न मरमु महीस॥

आनह रामहिं बेगि बोलाई। समाचार तव पूँछेहु आई॥
चलेउ सुमंत्र राय रुख जानी। लखी कुचालि कीन्हि कछु रानी॥

राम सुमंत्रहि आवत देखा। आदर कीन्ह पिता सम लेखा॥
निरखि बदनु कहि भूप रजाई। रघुकुल दीपहि चलेउ लेवाई॥
राम कुभाँति सचिव संग जाहीं। देखि लोग जहँ तहँ बिलखाहीं॥

दो०—जाइ दीख रघुवंश मनि, नरपति निपट कुसाजु।
सहमि परेउ लखि सिंहिनिहि, मनहु वृद्ध गजराज॥

करुनामय मृदु राम सुभाऊ। प्रथम दीख दुख सुना न काऊ॥
तदपि धीर धरि समउ विचारी। पूछी मधुर बचन महतारी॥
मोहि कहु मातु-तात दुख कारन। करिय जतन जेहि होइ निवारन॥
सुनहु राम सब कारन एहू। राजहिं तुम्ह पर बहुत सनेहू॥
देन कहेन्हि मोहि दुइ बरदाना। माँगेउ जो कछु मोहिं सुहाना॥
सो सुनि भयउ भूप उर सोचू। छाँड़ि न सकहि तुम्हार संकोचू॥

दो०—सुत सनेह इत वचन उत, संकट परेउ नरेसु।
सकहु तो आयसु धरहु सिर, मेटहु कठिन कलेसु॥

सबु प्रसंग रघुपतिहि सुनाई। बैठि मनहुँ तनु धरि निठुराई॥
मन मुसुकाइ भानु कुलभानू। राम सहज आनन्दनिधानू॥
बोले वचन विगत सब दूषन। मृदु मंजुल जनु बाग विभूषन॥
सुनुजननी सोइ सुत बड़ भागी। जो पितु मातु वचन अनुरागी॥
तनय मातु पितु पोषनिहारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा॥

दो०—मुनिगन मिलनु विसेषबन, सबहिं भाँति हित मोर॥
तेहि महँ पितु आयसु बहुरि, संमत जननी तोर॥

भरत प्रानप्रिय पावहि राजू। बिधिसब बिधि मोहिसन्मुख आजू
जौं न जाउँ बन ऐसेहु काजा। प्रथम गनिय मोहि मूढ़ समाजा॥

रघुपति पितहि प्रेमबस जानी। पुनि कछु कहिहि मातु अनुमानी॥
देस काल अवसर अनुसारी। बोले बचन विनीत विचारी॥
तात कहउँ कछु करउँ ढिठाई। अनुचित छमब जानि लरकाई॥
अति लघु बात लागि दुख पावा। काहु न मोहिकहि प्रथम जनावा॥
देखि गोसाइहिं पूछिउँ माता। सुनि प्रसंग भये सीतल गाता॥

दो०—मंगल समय सनेहबस, सोचु परिहरिय तात।
आयसु देइय हरपि हिय, कहि पुलके प्रभु गात॥

धन्य जनम जगतीतल तासू। पितहि प्रमोद चरित सुनि जासू॥
चारि पदारथ करतल ताके। प्रिय पितु मातु प्रान सम जाके॥
आयसु पालि जनम फलु पाई। ऐहउँ बेगिहि होउ रजाई॥
बिदा मातुसन आवउँ माँगी। चलिहउँ बनहिं बहुरि पगु लागी॥
अस कहि रामु गवन तब कीन्हा। भूप सोक बस उतरु न दीन्हा॥
नगर ब्यापि गइ बात सुतीछी। छुअत चढ़ीजनु सब तन बीछी॥
पुनि भए बिकलसकल नरनारी। बेलि बिटप जिमि देखि दवारी॥

दो०—समाचार तेहि समउ सुनि, सीय उठी अकुलाइ।
जाइ सासुपद कमल जुग, बंदि बैठि सिरुनाइ॥

दीन्हि असीस सासु मृदबानी। अति सुकुमारि देखि अकुलानी॥
मंजु बिलोचन मोचति बारी। बोली देखि राममहतारी॥
तात सुनहु सिय अति सुकुमारी। सास ससुर परजनहिं पियारी॥

दो०—पिता जनक भूपाल मनि, ससुर भानुकुलभानु।
पति रविकुल कैरवबिपिन, बिधु गुन रूप निधानु॥

सोइसिय चलन चहति वन साथा। आयसु काह होइ रघुनाथा॥
मातु समीप कहत सकुचाहीं। बोले समय समुझि मनमाहीं॥
राजकुमारि सिखावन सुनहू। आनभाँति जियजनि कछु गुनहू॥
आपन मोर नीक जौ चहहू। बचन हमार मानि गृह रहहू॥
आयसु मोर सासु सेवकाई। सवविधि भामिनि भवन भलाई॥
एहि तें अधिक धरमु नहिं दूजा। सादर सासु ससुर पद पूजा॥
जब-जब मातु करिहिं सुधि मोरी। होइहिं प्रेम बिकल मति भोरी॥
तब-तब तुम्ह कहि कथा पुरानी। सुन्दरि समुझायेहु मृदुवानी॥
कहउँ सुभाय शपथ सत मोहीं। सुमुखि मातुहित राखउँ तोहीं॥
मैं पुनि करि प्रमान पितुवानी। वेगि फिरब सुनू सुमुखि सयानी॥
दिवस जात नहि लागहिं बारा। सुन्दरि सिखवनु सुनहु हमारा॥
जौं हठ करहु प्रेमबस बामा। तौं तुम्ह दुख पाउब परिनामा॥
कानन कठिन भयंकर भारी। घोर घाम हिम बारि बयारी॥

दो०—भूमिसयन बलकल बसन, असन कन्द फल मूल।
ते कि सदा सब दिन मिलहि, समय समय अनुकूल॥

रहहु भवन अस हृदय विचारी। चंदवदनि दुख कानन भारी॥
सुनि मृदु बचन मनोहर पियके। लोचन ललित भरे जल सियके॥
उतर न आव बिकल बैदेही। तजन चहत सुचि स्वामि सनेही॥
बरबस रोकि विलोचन बारी। धरि धीरज उर अवनिकुमारी॥
लागि सासु पग कह करजोरी। छमहु देवि बड़ि अविनय मोरी॥
दीन्ह प्रानपति मोहि सिख सोई। जेहि विधि मोर परम हित होई॥

मैं पुनि समुझि दीखि मनमाहीं । पियवियोग सम दुख जग नाहीं ॥
अस कहि सिय रघुपति पदलागी । वोली वचन प्रेमरस पागी ॥

दो०—प्राननाथ करुनायतन, सुन्दर सुखद सुजान ।
तुम्ह बिनु रघुकुल-कुमुद-बिधु, सुरपुर नरक समान ॥
राखिय अवध जो अवधिलगि, रहत जानिअहि प्रान ।
दीनवंधु सुन्दर सुखद, सील सनेह निधान ॥

मोहि मग चलत न होइहि हारी । छिनु-छिनु चरनसरोज निहारी ।
सवहि भाँति पिय सेवा करिहउँ । मारग जनित सकल स्रम हरिहउँ
पायँ पखारि बैठि तरु छाहीं । करिहउँ वायु मुदित मन माहीं ॥
अस कहि सीय विकल भइभारी । वचन वियोग न सकी सँभारी
देखि दसा रघुपति जिय जाना । हठि राखे नहिं राखिहि प्राना ॥
कहेउ कृपालु भानुकुल नाथा । परिहरि सोच चलहु वन साथा ॥
नहिं बिषाद कर अवसर आजू । वेगि करहु वन गवन समाजू ॥
भइ बड़ि भीर भूप दरवारा । बरनि न जाइ बिषादु अपारा ॥
सचिव उठाइ राउ बैठारे । कहि प्रिय वचन राम पगुधारे ॥
सीय समेत दोउ तनय निहारी । व्याकुल भयउ भूमपति भारी ॥
सकइ न बोलि बिकल नरनाहू । सोकजनित उर दारुन दाहू ॥
नाइ सीस पद अति अनुरागा । उठि रघुबीर विदा तब मांगा ॥
पितु असीस आयसु मोहि दीजै । हरष समय बिसमय कत कीजै ॥
तात किये प्रिय प्रेम प्रमादू । जग जस जाइ होइ अपवादू ॥
सुनि सनेह वस उठि नरनाहा । बैठारे रघुपति गहिवाहा ॥

राय राम राखन हित लागी। बहुत उपाय किये छल त्यागी॥
लखी रामरुख रहत न जाने। धरम धुरंधर धीर सयाने॥
तब नृप सीय लाइ उर लीन्ही। अतिहितबहुतभाँतिसिख दीन्हीं॥
कहि वन के दुख दुसह सुनाये। सासुससुर पितु सुख समुझाये॥
सीय सकुच बस उत्तर न देई। सो सुनि तमकि उठी कैकेई॥
मुनि पट भूषन भाजन आनी। आगे धरि बोली मृदुबानी॥
नृपहि प्रानप्रिय तुम्ह रघुबीरा। सील सनेह न छाड़िहिं भीरा॥
सुकृति सुजसु परलोकु नसाऊ। तुम्हहिं जान बनकहिहिं न काऊ॥
अस विचारि सोइ करहु जो भावा। रामजननि सिख सुनि सुखपाव॥
राम तुरत मुनिवेष बनाई। चले जनक जननी सिरु नाई॥

दो०—सजि वन साज समाज सब, वनिता वन्धु समेत।
बंदि विप्र गुरु चरन प्रभु, चले करि सबहि अचेत॥

सीता सचिव सहित दोउ भाई। सृंगवेरपुर पहुँचे जाई॥
उतरे राम देवसरि देखी। कीन्ह दंडवत हरख बिसेखी॥
लषन सचिव सिय कीन्ह प्रनामा। सबहिं सहित सुख पायउ रामा॥
राम लषन सिय रूप निहारी। कहहि सप्रेम ग्राम नरनारी॥
ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन्ह पठये वन वालक ऐसे॥
एक कहहिं भल भूपति कीन्हा। लोचन लाहुहमहिविधि दीन्हा॥
जे पुर गाँव बसहिं मगमाहीं। तिन्हहिं नागसुर नगर सिहाहीं॥
जहँ-जहँ राम चरन चलि जाहीं। तिन्ह समान अमरावति नाहीं॥
जे भरि नयन विलोकहि रामहि। सीता लषन सहित घनस्यामहि॥

जे सर सरित राम अवगाहहिं । तिन्हहिं देवसरिसरित सराहहिं ॥
जेहि तरु तर प्रभु बैठहिं जाई । करहिं कलपतरु तासु बड़ाई ॥
परसि राम पद पदुम परागा । मानति भूरि भूमि निज भागा ॥
दो०—छाँह करहिं घन विबुध गन, वरपहिं सुमन सिहाहिं ।
देखत गिरि वन विहँग मृग, राम चले मग माहिं ॥

सीता लषन सहित रघुराई । गाँवनिकट जव निकसहिं जाई ॥
सुनि सव वाल वृद्ध नर नारी । चलहिं तुरत गृह काज विसारी ॥
राम लषन सिय सुन्दरताई । सब चितवहिं चित मन मतिलाई ॥
थके नारि नर प्रेम पियासे । मनहुँ मृगीमृग देखि दियासे ॥
सीय समीप ग्राम तिय जाहीं । पूछत अतिसनेह सकुचाहीं ॥
वार वार सव लागहिं पाये । कहहिं वचन मृदु सरल सुभाये ॥
राजकुमारि विनय हम करहीं । तिय सुभाव कछु पूछत डरहीं ॥
स्वामिनि अविनयछमवि हमारी । विलगु न मानवि जान गवाँरी ॥
राजकुँअर दोउ सहज सलोने । इन्हते लहि दुतिमरकत सोने ॥
कोटि मनोज लजावनि हारे । सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे ॥
सुनि सनेहमय मंजुल वानी । सकुचि सीय मनमहुँ मुसुकानी ॥
तिन्हहिंबिलोकिविलोकतिधरनी । दुहुँ सकोच सकुचित वरवरनी ॥
सकुचि सप्रेम वाल मृगनयनी । वोली मधुर वचन पिकवयनी ॥
सहज सुभाय सुभग तन गोरे । नाम लषन लघु देवर मोरे ॥
वहुरि वदनु विधु अंचल ढांकी । पिय तन चितइ भौंह कर वांकी ॥
खंजन मंजु तिरीछे नयननि । निजपतिकहेउतिन्हहिसियसयननि ॥
भई मुदित सव ग्राम वधूटी । रंकन्ह राय रासि जनु लूटी ॥

दो०—अति सप्रेम सिय पाय परि, बहु विधि देहिं असीस।
सदा सोहागिनि होहु तुम्ह, जब लगि महि अहिसीस॥
लषन जानकी सहित तब, गवन कीन्ह रघुनाथ।
फेरे सब प्रिय बचन कहि, लिये लाइ मन साथ॥

सीता लषन सहित रघुराई। जेहि बन बसहिं मुनिन्द सुखदाई॥
तेहि बन निकट दशानन गयऊ। तब मारीच कपट मृग भयऊ॥
अति विचित्र कछु बरनि न जाई। कनक-देह मनि-रचित बनाई॥
सीता परम रुचिर मृग देखा। अंग अंग सुमनोहर बेखा॥
सुनहु देव रघुवीर कृपाला। यहि मृगकर अतिसुन्दर छाला॥
सत्यसंध प्रभु बध करि एही। आनहु चर्म कहति बैदेही॥
मृग बिलोकि कटि परिकर बाँधा। करतल चाप रुचिर सर साँधा॥
प्रभु लछिमनहि कहा समुझाई। फिरत बिपिन निसिचर बहु भाई॥
सीता केरि करहु रखवारी। बुधि बिबेक बल समय बिचारी॥
प्रभुहिं बिलोकि चला मृग भाजी। धाये राम सरासन साजी॥
कबहुँ निकट पुनि दूरि पराई। कबहुँक प्रगटइ कबहुँ छिपाई॥
प्रगटत दुरत करत छल भूरी। यहि बिधि प्रभुहिं गये लेइ दूरी॥
तब तकि राम कठिन सर मारा। धरनि परउ कर घोर पुकारा॥
लछिमन कै प्रथमहिं लै नामा। पाछे सुमरेसि मनमहुँ रामा॥
प्रान तजत प्रगटेसि निज देहा। सुमिरेसि राम समेत सनेहा॥
खल बधि तुरत फिरे रघुबीरा। सोह चाप कर कटि तूनीरा॥
आरत-गिरा सुनी जब सीता। कह लछिमन सन परम सभीता॥
जाहु बेगि संकट अति भ्राता। लछिमन बिहँसि कहा सुनु माता॥

भृकुटि-विलास सृष्टि-लय होई। सपनहु संकट परइ कि सोई॥
मरम वचन सीता तब बोली। हरि प्रेरित लछिमन मति डोली॥
बन-दिसि देव सौंप सब काहू। चले जहाँ रावन - ससि - राहू॥
सून बीच दसकंधर देखा। आवा निकट जती के वेखा॥
नाना विधि कहि कथा सुनाई। राजनीति भय प्रीति दिखाई॥
कह सीता सुनु जती गोसाँई। बोलहु वचन दुष्ट की नाँई॥
तब रावन निज रूप दिखावा। भई समय जब नाम सुनावा॥
कह सीता धरि धीरज गाढ़ा। आइ-गयउ प्रभु खल रहु ठाढ़ा॥
जिमि हरिवधुहिं छुद्रसस चाहा। भयसि कालवस निसिचर नाहा॥
सुनत वचन दससीस रिसाना। मन महुँ चरन वन्दि सुख माना॥

दो०—क्रोधवंत तब रावन, लीन्हेसि रथ बैठाइ।
चला गगन पथ आतुर, भय रथ हाँकि न जाइ॥

रघपति अनुजहिं आवत देखी। बाहिज चिन्ता कीन्हि बिसेखी॥
जनकसुता परिहरेहु अकेली। आयहु तात वचन मम पेली॥
निसिचर निकर फिरहिं वन माहीं। मम मन आस्रम सीता नाहीं॥
गहि पद-कमल अनुज कर जोरी। कहेउ नाथ कछु मोहि न खोरी॥
अनुज समेत गये प्रभु तहवाँ। गोदावरि तट आश्रम जहवाँ॥
आश्रम देखि जानकी हीना। भये विकल जस प्राकृत दीना॥
चले राम त्यागा वन सोऊ। अतुलित वल नर केहरि दोऊ॥
बिरही इव प्रभु करत बिषादा। कहत कथा अनेक संवादा॥
पुनि प्रभु गये सरोवर तीरा। पंपा नाम सुभग गंभीरा॥

संत हृदय जस निर्मल बारी। बाँधे घाट मनोहर चारी॥
जहँ तहँ पियहिं विविध मृग नीरा। जनु उदार-गृह जाचक भीरा॥

दो०—पुरइन सघन ओट जल, वेगि न पाइय मर्म।
मायाछन्न न देखिए, जैसे निर्गुन ब्रह्म॥
सुखी मीन सब एक रस, अति अगाधि जल माहिं।
जथा धर्म सीलन्ह के, दिन सुख संजुत जाहिं॥

पुनि सीतहिं खोजत दोउ भाई। चले बिलोकत वन बहुताई॥
संकुल लता विटप घन कानन। बहु खग मृग तहँ गज पंचानन॥
आगे चले बहुरि रघुराया। रिष्यमूक पर्वत नियराया॥
तहँ रह सचिव सहित सुग्रीवा। आवत देखि अतुल बल सींवा॥
अति सभीत कह सुनु हनुमाना। पुरुष जुगल बल रूप निधाना॥
धरि बटु रूप देखु तैं जाई। कहेसु जानि जिय सैन-बुझाई॥
पठये बालि होहिं मन मैला। भागउँ तुरत तजउँ यह सैला॥
विप्र रूप धरि कपि तहँ गयऊ। माथ नाइ पूछत अस भयऊ॥
को तुम्ह श्यामल गौरि सरीरा। छत्री-रूप फिरहु वन बीरा॥
कोसलेस दसरथ के जाये। हम पितु बचन मानि बन आये॥
नाम राम लछिमन दोउ भाई। संग नारि सुकुमारि सुहाई॥
इहाँ हरी निसिचर बैदेही। विप्र फिरहिं हम खोजत तेही॥
आपन चरित कहा हम गाई। कहहु विप्र निज कथा बुझाई॥
प्रभु पहिचान परे गहि चरना। सो सुख उमा जाइ नहिं बरना॥
तब रघुपति उठाइ उर लावा। निज लोचन जल सींचि जुड़ावा॥

सुनु कपि जिय मानसि जनि ऊना। तैं मम प्रिय लछिमन तैं दूना॥
देखि पवनसुत पति अनुकूला। हृदय हरप बीती सब सूला॥
नाथ सैल पर कपिपति रहई। सो सुग्रीव दास तव अहई॥
तेहि सन नाथ मइत्री कीजै। दीन जानि तेहि अभय करीजै॥
सो सीता कर खोज कराइहि। जहँ तहँ मरकट कोटि पठाइहि॥
एहि विधि सकल कथा समुझाई। लिये दुअउ जन पीठि चढ़ाई॥
जव सुग्रीव राम कहुँ देखा। अतिसय जन्म धन्य करि लेखा॥
सादर मिलेउ नाइ पद माथा। भेंटेउ अनुज सहित रघुनाथा॥
कपिकर मन विचार एहि रीती। करिहहिं विधि मोसन ये प्रीती॥

दो०—तव हनुमंत उभय दिसि, कहि सव कथा सुनाइ।
पावक साखी देइ करि, जोरी प्रीत दृढ़ाइ॥

राम वालि निज धाम पठावा। नगर लोग सब व्याकुल धावा॥
राम कहा अनुजहिं समुझाई। राज देहु सुग्रीवहिं जाई॥
वरषागत निरमल रितु आई। सुधि न तात सीता कै पाई॥
एक वार कैसेहुँ सुधि जानउँ। कालहु जीति निमिष महुँ आनउँ॥
सुग्रीवहुँ सुधि मोरि विसारी। पावा राज कोस पुर नारी॥
जेहि सायक मारा मैं वाली। तेहि सर हतउँ मूढ़ कहुँ काली॥
लछिमन क्रोधवंत प्रभु जाना। धनुष चढ़ाइ गहे कर बाना॥

दो०—तव अनुजहिं समुझावा, रघुपति करुना सीवँ।
भय देखाइ लेइ आवहु, तात सखा सुग्रीवँ॥

एहि अवसर लछिमन पुर आये। क्रोध देखि जहँ तहँ कपि धाये॥
क्रोधवंत लछिमन सुनि काना। कह कपीस अति भय अकुलाना॥

सुनि हनुमंत संग लै तारा। करि विनती समुझाउ कुमारा॥
तारा सहित जाय हनुमाना। चरनवन्दि प्रभु सुजसु बखाना॥
करि विनती मंदिर लेइ आये। चरन पखारि पलंग बैठाये॥
तब कपीस चरनहिं सिरु नावा। गहि भुज लछिमन कंठ लगावा॥
नाथ विषय सम मद कछु नाहीं। मुनि मन छोभ करइ छन माहीं॥
सुनत विनीत बचन सुख पावा। लछिमन तेहिबहु बिधि समुझावा॥
पवन तनय सब कथा सुनाई। जेहि विधि गये दूत समुदाई॥

दो०—चले सकल बन खोजत, सरिता सर गिरि खोह।
रामकाज लयलीन मन, विसरा तनु कर छोह॥

इहाँ विचारहिं कपि मन माहीं। बीती अवधि काज कछु नाहीं॥
कह अंगद लोचन भरि बारी। दुहु प्रकार भइ मृत्यु हमारी॥
इहाँ न सुधि सीता कै पाई। उहाँ गये मारिहिं कपिराई॥
पिता बधे पर मारत मोही। राखा राम निहोर न ओही॥
अस कहि लवन सिन्धु-तट जाई। बैठे कपि सब दर्भ डसाई॥
जामवन्त अंगद-दुख देखी। कही कथा उपदेस बिसेखी॥
यहि बिधि कथा कहहि बहु भाँती। गिरि कन्दरा सुना संपाती॥
जो नाघइ सतजोजन सागर। करइ सो रामकाज मति आगर॥
पापिउ जाकर नाम सुमिरहीं। अति अपार भवसागर तरहीं॥
तासु दूत तुम्ह तजि कदराई। राम हृदय धरि कहहु उपाई॥
अस कहि उमा गीध जब गयऊ। तिन्हके मन अति बिसमय भयऊ॥
निज निज बल सब काहू भाखा। पार जाइ कर संसय राखा॥

कहइ रिच्छपति सुनु हनुमाना । का चुप साधि रहेउ बलवाना ॥
पवनतनय बल पवन समाना । बुधि विवेक बिज्ञान निधाना ॥
कवन सो काज कठिन जग माहीं । जो नहि तात होइ तुम्ह पाहीं ॥
रामकाज लगि तव अवतारा । सुनतहिं भयउ पर्वताकारा ॥
कनक बरन तनु तेज बिराजा । मानहु अपर गिरिन्ह कर राजा ॥
सिंहनाद करि बारहिं बारा । लीलहिं नाँघउँ जलधि अपारा ॥
सहित सहाय रावनहिं मारी । आनउ इहाँ त्रिकूट उपारी ॥
निसिचरि एक सिन्धु महुँ रहई । करि माया नभ के खग गहई ॥
जीव-जन्तु जेहि गगन उड़ाहीं । जल विलोकि तिन्ह के परिछाहीं ॥
गहइ छाँह सक सो न उड़ाई । यहि विधि सदा गगनचर खाई ॥
सोइ छल हनूमान ते कीन्हा । तासु कपट कपि तुरतहि चीन्हा ॥
ताहि मारि मारुत सुत वीरा । बारिधि पार गयउ मतिधीरा ॥
तहाँ जाइ देखी वन सोभा । गुञ्जत चंचरीक मधु लोभा ॥
नाना तरु फल फूल सुहाये । खग मृग वृन्द देखि मन भाये ॥
सैल विसाल देखि इक आगे । ता पर धाइ चढ़ेउ भय त्यागे ॥
उमा न कछु कपि कै अधिकाई । प्रभु प्रताप जो कालहिं खाई ॥
गिरि पर चढ़ि लंका तेहि देखी । कहि न जाइ अति दुर्ग बिसेखी ॥
अति उतंग जलनिधि चहुँपासा । कनक-कोट कर परम प्रकासा ॥

दो०—पुर रखवारे देखि बहु, कपि मन कीन्ह बिचार ।
अति लघु रूप धरउँ निसि, नगर करउँ पैसार ॥

मसक समान रूप कपि धरी । लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी ॥

अति लघु रूप धरेउ हनुमाना । पैठा नगर सुमिरि भगवाना ॥
मन्दिर मन्दिर प्रति करि सोधा । देखे जहँ तहँ अगनित जोधा ॥
गयउ दसानन मन्दिर माहीं । अति विचित्र कहि जात सो नाहीं ॥
सयन किये देखा कपि तेही । मन्दिर महुँ न दीखि बैदेही ॥
करि सोइ रूप गयउ पुनि तहवाँ । बन असोक सीता रह जहवाँ ॥
देखि मनहि महुँ कीन्ह प्रनामा । बैठेहि बीति जात निसि जामा ॥
कृस तनु सीस जटा इक बेनी । जपति हृदय रघुपति गुन स्रेनी ॥

दो०—निज पद नयन दिये मन, रामचरन महँ लीन ।
परम दुखी भा पवनसुत, देखि जानकी दीन ॥

तरु पल्लव महुँ रहा लुकाई । करइ विचार करउँ का भाई ॥
देखि परम बिरहाकुल सीता । सो छन कपिहिं कलप सम बीता ॥

सो०—कपि करि हृदय विचार, दीन्हि मुद्रिका डारि तब ।
जनु असोक अंगार, दीन्हि हरपि उठि कर गहेउ ॥

तब देखी मुद्रिका मनोहर । रामनाम अंकित अति सुन्दर ॥
चकित चितव मुँदरी पहिचानी । हरष विषाद हृदय अकुलानी ॥
जीति को सकइ अजय रघुराई । माया ते असि रचि नहिं जाई ॥
सीता मन विचार कर नाना । मधुर वचन बोलेउ हनुमाना ॥
रामचन्द्र गुन वरनइ लागा । सुनतहि सीता कर दुख भागा ॥
लागी सुनइ स्रवन मन लाई । आदिहुँ तें सब कथा सुनाई ॥
स्रवनामृत जेहि कथा सुनाई । कहि सो प्रगट होत किन भाई ॥
तब हनुमंत निकट चलि गयऊ । फिरि बैठी मन विसमय भयऊ ॥

रामदूत मैं मातु जानकी । सत्य सपथ करुना-निधान की ॥
यह मुद्रिका मातु मैं आनी । दीन्हि राम तुम्ह कहे सहिदानी ॥
नर वानरहिं संग कहु कैसे । कही कथा भइ संगीति जैसे ॥

दो०—कपि के वचन सप्रेम सुनि, उपजा मन विस्वास ।
जाना मन क्रम वचन यह, कृपासिंधु कर दास ॥

हरिजन जानि प्रीति अति बाढ़ी । सजल नयन पुलकावलि ठाढ़ी ॥
बूड़त विरह जलधि हनुमाना । भयहु तात मो कहुँ जलयाना ॥
अब कहु कुसल जाउँ वलिहारी । अनुज सहित सुख भवन खरारी ॥
कोमल चित कृपालु रघुराई । कपि केहि हेतु धरी निठुराई ॥
सहज वानि सेवक सुखदायक । कबहुँक सुरति करत रघुनायक ॥
कबहुँ नयन मम सीतल ताता । होइहहिं निरखि स्याम मृदुगाता ॥
वचन न आव नयन भरि बारी । अहह नाथ हौं निपट बिसारी ॥
देखि परम विरहाकुल सीता । बोला कपि मृदु वचन विनीता ॥
मातु कुशल प्रभु अनुज समेता । तव दुख दुखी सुकृपा-निकेता ॥
जनि जननी मानहुँ जिय ऊना । तुम्ह ते प्रेम राम के दूना ॥
कछुक दिवस जननी धरु धीरा । कपिन्ह सहित अइहहिं रघुवीरा ॥
निसिचर मारि तोहिं लै जैहहि । तिहुँ पुर नारदादि जस गैहहिं ॥
हैं सुत कपि सब तुम्हहिं समाना । जातुधान भट अति बलवाना ॥
मोरे हृदय परम सन्देहा । सुनि कपि प्रकट कीन्हि निज देहा ॥
कनक भूधराकार शरीरा । समर भयंकर अति बलवीरा ॥
सीता मन भरोस तब भयऊ । पुनि लघुरूप पवनसुत लयऊ ॥

दो०—सुनु माता साखामृग, नहिं बल, बुद्धि बिसाल।
प्रभु प्रताप ते गरुड़हिं, खाइ परम लघु व्याल ॥

बार-बार नायेसि पद सीसा। बोला बचन जोरि कर कीसा ॥
अब कृत कृत्य भयउँ मैं माता। आसिष तव अमोघ विख्याता ॥
सुनहु मातु मोहिं अतिसय भूखा। लागि देखि सुन्दर फल रूखा ॥
सुनु सुत करहिं बिपिन रखवारी। परम सुभठ रजनीचर भारी ॥
तिन्ह कर भय माता मोहि नाहीं। जौं तुम्ह सुख मानहु मन माहीं॥

दो०—देखि बुद्धि बल निपुन कपि, कहेउ जानकी जाहु।
रघुपति चरन हृदय धरि, तात मधुर फल खाहु ॥

चलेउ नाइ सिर बैठेउ बागा। फल खायेसि तरु तोरन लागा ॥
सब रजनीचर कपि संहारे। गये पुकारत कछु अधमारे ॥
पुनि पठयेउ तेहि अच्छय-कुमारा। चला संग लेई सुभट अपारा ॥
आवत देखि बिटप गहि तर्जा। ताहि निपाति महा-धुनि गर्जा ॥

दो०—कछु मारेसि कछु मर्देसि, कछु मिलयेसि धरि धूरि।
कछु पुनि जाइ पुकारे, प्रभु मरकट बल-भूरि ॥

सुनि सुत वध लंकेस रिसाना। पठयेसि मेघनाद बलवाना ॥
मारेसि जनि सुत बाँधेसु ताही। देखिय कपिहिं कहाँ कर आही ॥
चला इन्द्रजित अतुलित जोधा। बन्धु निधन सुनि उपजा क्रोधा ॥
ब्रह्मबान कपि कहँ तेहि मारा। परतिहु बार कटकु संहारा ॥
तेहि देखा कपि मुरछित भयऊ। नागपास बाँधेसि लेइ गयऊ ॥

दो०—कपिहिं बिलोकि दसानन, बिहँसा कहि दुर्बाद ।
सुत बध सुरति कीन्ह पुनि, उपजा हृदय बिषाद ॥
कपि के ममता पूँछि पर, सबहिं कहेउ समझाय ।
तेल बोरि पट बाँधि पुनि, पावक देहु लगाय ॥

जातुधान सुनि रावन बचना, लागे रचइ मूढ़ सोइ रचना ॥
कौतुक कहँ आये पुरवासी, मारहिं चरन करहि बहु हाँसी ॥
पावक जरत देखि हनुमंता । भयउ परम लघु रूप तुरन्ता ॥
निबुकि चढ़ेऊ कपि कनक अटारी । भई सभीत निसाचरनारी ॥

दो०—हरि प्रेरित तेहि अवसर, चले मरुत उनचास ॥
अट्टहास करि गर्जा, कपि बढ़ि लाग अकास ॥

देह बिसाल परम हरुआई । मन्दिर तें मन्दिर चढ़ि धाई ॥
जरइ नगर भा लोग बिहाला । झपट लपट बहु कोटि कराला ॥
उलटि पलटि लंका सब जारी । कूदि परा पुनि सिंधु मझारी ॥

दो०—पूँछि बुझाइ खोइ स्रम, धरि लघु रूप बहोरि ।
जनक सुता के आगे, ठाढ़ भयउ कर जोरि ॥

मातु मोहि दीजै कछु चीन्हा । जैसे रघुनायक मोहि दीन्हा ॥
चूड़ामनि उतारि तब दयऊ । हरप समेत पवनसुत लयऊ ॥

दो०—जनक सुतहि समुझाइ करि, बहुबिधि धीरज दीन्ह ।
चरन-कमल सिरु नाई कपि, गवन राम पहिं कीन्ह ॥

रिपु के समाचार जब पाये । राम सचिव सब निकट बुलाये ॥
करि बिचार तिन्ह मंत्र दिढ़ावा । चारि अनी कपि कटकु बनावा ॥

जथा जोग सेनापति कीन्हे। जूथप सकल बोल तब लीन्हे ॥
प्रभु-प्रताप कहि सब समुझाये। सुन कपि सिंहनाद करि धाये ॥
गर्जहिं तर्जहि भालु कपीसा। जय रघुबीर कोसलाधीसा ॥

दो०—जयति राम जय लछिमन, जय कपीस सुग्रीवँ।
गर्जहि केहरि नाद कपि, भालु महावल सीवँ ॥

लंका भयउ कोलाहल भारी। सुना दसानन अति अहंकारी ॥
देखहु बनरन्ह केरि ढिठाई। बिहँसि निसाचर सेन बोलाई ॥
सुभट सकल चारिहुँ दिसि जाहू। धरि धरि भालुकीस सब खाहू ॥
चले निसाचर आयसु माँगी। गहि कर भिंडिपाल बर साँगी ॥
तोमर मुगदर परिघ प्रचंडा। सूल कृपान परसु गिरि खंडा ॥

दो०—नानायुध सर-चाप-धर, जातुधान बलबीर।
कोटि कंगुरन्हि चढ़ि गये, कोटि कोटि रनधीर ॥

उत रावन इत राम दोहाई। जयति जयति जयपरी लराई ॥
निसिचर सिखर समूह ढहावहि। कूदि धरहिं कपि फेरि चलावहिं ॥
छं०—धरि कुधर खंडप्रचंड मरकट भालु गढ़ पर डारहीं।
झपटहिं चरन गहि पटकि महि भजि चलत बहुरि पचारहीं ॥
अति तरल तरुन प्रताप तर्जहि तमकि गढ़ चढ़ि चढ़ि गये ॥
कपि भालु चढ़ि मन्दिरन्ह जहँ तहँ राम जसु गावत भये ॥
कहइ दसानन सुनहु सुभट्टा। मर्दहु भालु कपिन्ह के ठट्टा ॥
हौं मारिहउँ भूप दोउ भाई। अस कहि सन्मुख फौज रेंगाई ॥
यह सुधि सकल कपिन्ह जब पाई। धाये करि रघुबीर दोहाई ॥

छं०—धाये बिसाल कराल मरकट भालु काल समानते ॥
॥ मानहु सपच्छ उड़ाहिं भूधर बृन्द नाना बानते ॥
॥ नख दसन सैल महाद्रुमायुध सबल संक न मानहीं ॥
जयराम रावन मत्तगज मृगराजु सुजस बखानहीं ॥

दो०—दुहुँ दिसि जयजयकार करि, निज निज जोरी जानि।
भिरे बीर इत रघुपतिहिं, उत रावनहिं बखानि ॥

रावन रथी बिरथ रघुबीरा। देखि बिभीषन भयउ अधीरा ॥
अधिक प्रीति मन भा सन्देहा। बन्दि चरन कह सहित सनेहा ॥
नाथ न रथ नहिं तनुपदत्राना। केहि बिधि जितब बीर बलवाना ॥
सुनहु सखा कह कृपानिधाना। जेहि जय होइ सो स्यन्दन आना ॥
सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ़ ध्वजा पताका ॥
बल बिवेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे ॥
ईस भजनु सारथी सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना ॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। बर बिज्ञान कठिन कोदंडा ॥
अमल अचल मन त्रोन समाना। संजम नियम सिली मुख नाना ॥
कवच अभेद बिप्र गुरु पूजा। यहि सम बिजय उपाय न दूजा ॥
सखा धरममय अस रथ जाके। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताके ॥

दो०—महा अजय संसार रिपु, जीति सकइ सो बीर।
जाके अस रथ होइ दृढ़, सुनहु सखा मतिधीर ॥
सुनत बिभीषन प्रभु बचन, हरषि गहे पद-कंज।
यह बिधि मोहि उपदेसिअ, रामकृपा सुख पुंज ॥

उत पचार दसकंधर, इत अंगद हनुमान।
लरत निसाचर भालु कपि, करि निज निज प्रभु आन ॥
छंद—क्रुद्धे कृतांत समान कपि तनु स्रवत सोनित राजहीं ॥
मर्दहिं निसाचर कटक भट बलवंत घन जिमि गाजहीं ॥
मारेहिं चपेटन्हि डाँटि दातन्हि काटि लातन्ह मीजहीं ॥
चिक्करहिं मरकट भालु छल बल करहिं जेहि खल छीजहीं ॥
दोहा—खैंचि सरासन स्रवान लगि, छांड़े सर इकतीस।
रघुनायक सायक चले, मानहु काल फनीस ॥
सायक एक नाभि सर सोखा। अपर लगे भुज सिर करि रोखा ॥
लेइ सिर बाहु चले नाराचा। सिर भुजहीन रुन्ड महि नाचा ॥
धरनि धसे धर धाव प्रचंडा। तब प्रभुसर हति कृत जुग खंडा ॥
गर्जेउ मरत घोर रव भारी। कहाँ रामु रन हतउँ पचारी ॥
डोली भूमि गिरा दसकंधर। छुभित सिंधु सरि दिग्गज भूधर ॥
धरनि परेउ दोउ खंड बढ़ाई। चापि भालु-मरकट समुदाई ॥
बरषहिं सुमन देव मुनिबृंदा। जय कृपाल जय जयति मुकुन्दा ॥
दो०—सुमन बृष्टि नभसंकुल, भवन चले सुखकंद।
चढ़ी अटारिन्ह देखहिं, नगर नारि नर बृन्द ॥
कंचन कलस बिचित्र सँवारे। सबहिं धरे सजि निज निज द्वारे ॥
बन्दनिवार पताका केतू। सबन्हि बनाये मंगल हेतू ॥
बीथी सकल सुगंध सिंचाई। गजमनि रचि बहु चौक पुराई ॥
नाना भाँति सुमंगल साजे। हरषि नगर निसान बहु बाजे ॥
जहँ तहँ नारि निछावरि करहीं। देहि असीस हरष उर भरहीं ॥

कंचन थार आरती नाना। जुवती सजइ करहिं सुभगाना॥
करहिं आरती-आरत हर के। रघुकुल कमलबिपिन-दिन-करके॥

दो०—नारि कुमुदनी अवधसर, रघुपति विरह दिनेश।
अस्त भए गिगसत भई, निरखि राम राकेस॥

कृपासिन्धु जब मंदिर गयऊ। पुर नर नारि सुखी सब भयऊ॥
गुरु वसिष्ठ द्विज लिये बोलाई। आजु सुघरी सुदिन सुभदाई॥
सब द्विज देहु हरषि अनुसासन। रामचंद्र बैठहिं सिंहासन॥
मुनि वसिष्ठ के वचन सुहाये। सुनत सकल विप्रन्ह अति भाये॥
कहहिं वचन मृदु विप्र अनेका। जग अभिराम राम अभिषेका॥
अब मुनिवर विलंब नहि कीजै। महाराज कहँु तिलक करीजै॥

दो०—रामराज्य बिहँगेस सुनु, सचराचर जग माहिं।
काल कर्म सुभाव गुन, कृत दुख काहुहि नाहिं॥

भूमि सप्त सागर मेखला। एक भूप रघुपति कोसला॥
भुवन अनेक रोम प्रति जासू। यह प्रभुता कछु बहुत न तासू॥
सो महिमा समुझत प्रभु केरी। यह बरनत हीनता घनेरी॥
सो महिमा खगेस जिन्ह जानी। फिरि यह चरित तिनहुँ रतिमानी॥
सोउ जाने कर फल यह लीला। कहहिं महा मुनिवर दमसीला॥
रामराज कर सुख संपदा। बरनि न सकहि फनीस सारदा॥
सब उदार सब पर उपकारी। बिप्रचरन सेवक नरनारी॥
एक नारि ब्रतरत सब झारी। ते मन वच क्रम पति हितकारी॥

छंद—पाइ न केहि गति पतित पावन राम भजि सुनु सठ मना।
गनिका अजामिल व्याध गीध गजादि खल तारे घना॥
आभीर जवन किरात खस स्वपचादि अति अघ रूप जे।
कहि नाम वारक तेपि पावन होहिं राम नमामि ते॥

दो०—मो सम दीन न दीनहित, तुम्ह समान रघुवीर।
अस विचारि रघुवंस मनि, हरहु विषम भवभीर॥

—:०:—

पद

(१)

अब लौं नसानी, अब न नसैहौं।
राम-कृपा भव-निसा सिरानी, जागे पुनि न डसैहौं॥
पायों नाम चारु चिंतामनि, उर-कर तें न खसैहौं।
स्यामरूप सुचि रुचिर कसौटी, चित कंचनहि कसैहौं॥
परवस जानि हँस्यो इन इन्द्रिन, निज बस ह्वै न हँसैहौं।
मन-मधुकर पन करि 'तुलसी' रघुपति-पद-कमल बसैहौं॥

(२)

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ-कृपालु-कृपा तें सन्त-सुभाव गहौंगो॥
जथालाभ सन्तोष सदा, काहू सो कछु न चहौंगो।
परहित-निरत निरंतर मन क्रम बचन नेम निबहौंगो॥
पुरुष बचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो॥
बिगत मान, सम सीतल मन, परगुन औगुन न कहौंगो॥
परिहरि देह-जनित चिन्ता, दुख-सुख समबुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि, अबिचल हरि-भक्ति लहौंगो॥

(३)

जाके प्रिय न राम-बैदेही।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम, जद्यपि परम सनेही॥

तज्यो पिता प्रह्लाद, विभीषन बन्धु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो, नाह ब्रज-बनितनि, भये जग मंगलकारी॥
नातो नेह राम के मनियत, सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं।
अंजन कहा आँखि जेहि फूटै, बहुतक कहउँ कहाँ लौं॥
तुलसी सोइ आपनो सकल विधि पूज्य प्रान तें प्यारो।
जासों होय सनेह राम पद, एतो मतो हमारो॥

(४)

ऐसी मूढ़ता या मन की।
परिहरि राम-भगति-सुर-सरिता आस करत ओस-कन की॥
धूम-समूह निरखि चातक ज्यों, तृषित जानि मति घन की।
नहिं तहँ सीतलता न बारि, पुनि हानि होत लोचन की॥
ज्यों गच-कोच बिलोकि सेन जड़, छाँह आपने तन की।
टूटत अति आतुर अहार बस, छति बिसार आनन की॥

(५)

पालने रघुपतिहि झुलावै।
लै लै नाम सप्रेम सरस स्वर कौसल्या कल कीरति गावै॥
केकि-कंठ-द्युति स्याम बरन बपु बाल विभूषन रुचिर बनाए।
अलकैं कुटिल ललित लटकन भ्रू नील नलिन दोउ नयन सुहाए॥
सिसु सुभाय सोहत जब कर गहि बदन निकट पद पल्लव लाए।
मनहुँ सुभग जुग भुजग जलज भरि लेत सुधा ससि सों सचुपाए॥
उपर अनूप बिलोकि खेलौना किलकत पुनि पुनि पानि पसारत।
मनहुँ उभय अँभोज अरुन सों विधु-भय विनय करत अति आरत

तुलसिदास बहु बास बिबस अलि गुंजत छवि नहिं जात बखानी।
मनहुँ सकल स्रुति ऋचा मधुप होइ बिसद सुजस बरनत बरबानी॥

(६)

हरि को ललित बदन निहारु॥
निपटहीं डाटति निठुर ज्यों लकुट करते डारु॥
मंजु अंजन सहित जलकन चुवत लोचन चारु।
श्याम सारस मगन मनो ससि स्रवत सुधा सिंगारु॥
सुभग उर दधि बुन्द सुन्दर लखि अपनपो वारु।
मनहुँ मरकत मृदु सिखर पर लसत बिपद तुषारु॥
कान्ह हूँ पर सतर भौं हैं महरि मनहिं बिचारु।
'दासतुलसी' रहति क्यों रिस निरखि नन्द-कुमारु॥

(७)

अवधेस के द्वारे सकारे गई सुत गोद कै भूपति लै निकसे।
अवलोकि हौं सोच-बिमोचन को ठगि सी रही जे न ठगे धिक से॥
तुलसी मन रंजन रंजित अंजन नैन सुखंजन जातक से।
सजनी ससि में समसील उभै नव नील सरोरुह से बिकसे।
तन की दुति स्याम सरोरुह लोचन कंज की मंजुलताई हरैं।
अति सुन्दर सोहत धूरि भरे छवि भूरि अनंग की दूर धरैं॥
दमकैं दतियाँ दुति दामिन सी किलकैं कल बाल बिनोद करैं।
अवधेस के बालक चारि सदा, तुलसी मन मन्दिर में बिहरैं॥
वर दंत की पंगति कुन्द कली अधराधर पल्लव बोलन की।
चपला चमकै घन बीच जुगै छवि मोतिन माल अमोलन की॥

घुघुरारि लटैं लटकैं मुख ऊपर कुण्डल लोल कपोलन की।
नेवछावर प्रान करैं तुलसी बलि जाऊँ लला इन बोलन की॥

(८)

जिनको पुनीत वारि धारे सिर पै पुरारि,
त्रिपथगामिनि-जसु वेद कहैं गाइ कै।
जिनको जोगींद्र मुनिवृन्द देव देह भरि,
करत बिराग जप-जोग मन लाइ कै॥
'तुलसी' जिनकी धूरि परसि अहल्या तरी,
गौतम सिधारे गृह गौनो-सो लिवाइ कै॥
तेई पाँय पाइ कै चढ़ाइ नाव धोये बिनु,
ख्वैहौं न पठावनी कै ह्वै हौं न हँसाइ कै?
प्रभु रुख पाइ कै बोलाइ बाल घरनिहि,
बंदि कै चरन चहूँ दिसि बैठे घेरि घेरि।
छोटो सो कठौता भरि आनि पानी गंगा जू को,
धोइ पाँय पियत पुनीत वारि फेरि फेरि॥
'तुलसी' सराहैं ताको भाग सानुराग सुर,
बरषैं सुमन जय जय कहैं टेरि टेरि।
बिबुध-सनेह-सानी बानी असयानी सुनी,
हँसे राघौ जानकी लखन तन हेरि हेरि॥

दोहा

एक भरोसो एक बल, एक आस बिस्वास।
स्वाति सलिल रघुनाथ जस, चातक तुलसीदास॥ १॥

ऊँची जाति पपीहरा, पियत न नीचो नीर।
कै जाँचै घनस्याम सों, कै दुख सहै सरीर॥ २॥

तुलसी सन्त सुअंब तरु, फूलि फलहिं पर हेत।
इतते ये पाहन हनत, उतते वे फल देत॥ ३॥

असन वसन सुत नारि सुख, पापिहुँ के घर होइ।
सन्त-समागम राम-धन, तुलसी दुर्लभ दोइ॥ ४॥

प्रेम बैर अरु पुन्य अघ, जस अपजस जयहान।
बात बीज इन सबन को, तुलसी कहहिं सुजान॥ ५॥

दुर्जन दर्पन सम सदा, करि देखौ हिय गौर।
सनमुख की गति और है, विमुख भये पर और॥ ६॥

साहिब तें सेवक बड़ो, जो निज धरम सुजान।
राम बाँधि उतरे उदधि, लाँघि गये हनुमान॥ ७॥

तुलसी पावस के समै, धरी कोकिलन मौन।
अब तो दादुर बोलिहैं, हमैं पूछिहै कौन? ८॥

—:o:—

द्वितीय भाग

कवीरदास

१—कबीरदास

जन्म-संवत्—१४५६] [मृत्यु संवत्—१५७५

कहा जाता है कि कबीर किसी ब्राह्मण की विधवा-कन्या के पुत्र थे। जन्म होते ही उनकी माँ ने उन्हें फेंक दिया। उनका लालन-पालन नीरू नामक एक जुलाहे ने किया। उन्होंने स्वामी रामानन्द जी को अपना गुरू बना लिया। जीवन भर वे जुलाहे का काम करते रहे। यह कहा जाता है कि उनकी स्त्री का नाम लोई था और पुत्र का कमाल। 'बीजक' उनका प्रधान ग्रन्थ है।

हिन्दी के आदिकाल में जिन सन्तों ने अपने उपदेशों को पद्य-बद्ध किया है उनमें कबीर सबसे प्रधान हैं। कबीर के उपदेश किसी जाति, देश या काल की सीमा से बद्ध नहीं। इसीसे यह कहा जा सकता है कि वे हिन्दू भी नहीं और मुसलमान भी नहीं। उनके जन्म के सम्बन्ध में जो कथा प्रसिद्ध है उससे भी इसी बात कि पुष्टि होती है। उन्होंने जन्म लिया एक ब्राह्मण के घर और जीवनयापन किया एक मुसलमान के घर। जो बात समाज में अत्यन्त लज्जाजनक समझी जाती है—वही बात उनके जन्म के सम्बन्ध में कही जाती है। कबीर प्रेम के उपासक थे, अतएव उन्हें प्रेम की ही सन्तान कहनी चाहिए।

कबीरदास ने एक नया सम्प्रदाय स्थापित किया। उनका जन्म उस काल में हुआ था—जब ब्राह्मण-धर्म के विरुद्ध भारत में आन्दोलन होने

लगा था। हिन्दू-समाज में धर्म की जो कृत्रिम मर्यादा बना दी गई थी उसके कारण समाज बड़ा संकुचित हो गया था। धर्म केवल स्मृति-शास्त्र का अनुशासनमात्र था और सदाचार आडम्बर। एकमात्र ब्राह्मण ही धर्म के उपदेशक थे। कबीर नीच-कुलोत्पन्न थे। उन्हे कोई भी ब्राह्मण धर्म का उपदेशक स्वीकार नहीं करता था। कबीर तत्कालीन प्रचलित भाषा में धर्मोपदेश किया करते थे। उस समय हिन्दू-धर्म के सभी अनुशासन संस्कृत में निबद्ध थे। कबीर ने ब्राह्मणों के इस धर्माधिकार और संस्कृत के एकाधिपत्य का सदैव आक्षेप किया है :—

संसकिरत पंडित कहैं, बहुत करैं अभिमान।
भाषा जानि तरक करैं, ते नर मूढ़ अजान॥
कलि का बाम्हन मसखरा, ताहि न दीजै दान।
कुटुम सहित नरके चला, साथ लिये जजमान॥
पंडित और मसालची, दोनों सूझै नाहिं।
औरन को करै चांदना, आप अँधेरे माहिं॥

विरोधियों ने कबीर के नीच कुल पर अवश्य आक्षेप किया होगा। परन्तु कबीर ने बड़े गर्व से अपने कुल का उल्लेख किया है :—

तू ब्राह्मण मैं काशी का जुलाहा, बुझो मोर गियाना।

एक दूसरी जगह उन्होंने कहा है :—

काशी पुरी मैं बासी ब्राह्मण, नाम मेरा परबीना।
एक बार हरि नाम बिसारा, पकर जुलाहा कीना॥

कबीर सन्त थे। उन्हें अपने सन्देश पर दृढ़ विश्वास था—

काशी में हम प्रकट भये हैं, रामानन्द चिताये;
समरथ का परवाना लाये, हंस उबारन आये।

कबीरदास मूर्ति-पूजा, तीर्थ-यात्रा और जाति-भेद के विरोधी थे। वे सत्य के उपासक थे, विनय और शील, संयम और प्रेम को ही साधना के लिये आवश्यक समझते थे। वे गुरू की महत्ता को स्वीकार करते थे। उनके प्रेम में वैराग्य था और वैराग्य में त्याग की प्रधानता थी। जिस प्रेम में सर्वस्व का त्याग नहीं किया गया हो, उसे वे प्रेम ही नहीं मानते थे। वे निर्गुण और निराकार उपासक थे, इसी से उनकी भक्ति में ज्ञान की प्रधानता है। उनके बाद जो भक्त कवि हुए हैं, वे सगुण और साकार भगवान् के उपासक हुए। उन्होंने मनुष्यों में भगवान् के स्वरूप को उपलब्ध करना चाहा, उन्हीं के कारण देवत्व में मनुष्यत्व का भाव आरोपित हुआ और कबीर के निराकार राम तुलसीदास जी के साकार राम हुए।

प्रसिद्ध ग्रन्थ—

१—शब्दावलि   २—साखी
३—रमैनी   ४—बीजक

—:०:—

कबीर की साखी

गुरु-गोविद दोनों खड़े, काके लागूँ पायँ।
बलिहारी गुरु आपने, जिन गोविद दियो बताय॥

माली आवत देखि करि, कलियन करी पुकार।
फूले फूले चुन लिये, काल्हि हमारी बार॥

बाढ़ी आवत देख करि, तरुवर डोलन लाग।
हम्म कटे की कछु नहीं, पंखेरू घर भाग॥

फागुन आवत देख करि, बन रूना मन माहिं।
ऊँची डाली पात हैं, दिन दिन पीले थाहिं॥

यों साईं तन में बसै, ज्यों पुहुपन में बास।
कस्तूरी का मिरग ज्यों, फिरि-फिरि सूँघै घास॥

कमोदनी जल में बसै, चंदा बसै अकास।
जो जाही को भावता, सो ताही कै पास॥

जिभ्या में अमृत वसै, जो कोइ जानै बोल।
बिस बासुकि का ऊतरै, जिभ्या का इक बोल॥

रोड़ा ह्वै रहु बाट का, तजि पखंड अभिमान।
ऐसा जो जन ह्वै रहे, ताहि मिले भगवान॥

रोड़ा भया तो क्या भया, पंथी को दुख देह।
हरिजन ऐसा चाहिए, जिसी जिमीं की खेह॥

खेह भई तो क्या भया, उड़ि उड़ि लागे अंग।
हरिजन ऐसा चाहिए, पानी जैसा रंग॥
पानी भया तो क्या भया, ताता सीरा होइ।
हरिजन ऐसा चाहिये, जैसा हरि ही होइ॥
साधू ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाइ।
सार सार को गहि रहै, थोथा देइ उड़ाइ॥
सिंहन के लहँड़े नहीं, हंसन की नहिं पांत।
लालन की नहिं बोरियाँ, साधु न चलैं जमात॥
लघुता ते प्रभुता मिलै, प्रभुता तें प्रभु दूरि॥
चींटी लै सक्कर चली, हाथी के सिर धूरि॥
आछे के दिन पाछे गये, हरि ते कियो न हेत।
अब पछतावा क्या करै, चिड़ियाँ चुग गईं खेत॥
मूँड़ मुड़ाये हरि मिलै, सब कोइ लेयँ मुड़ाइ।
वार वार के मूँड़ ते, भेड़ न वैकुंठ जाइ॥
हंसा वगुला एक सा, मान सरोवर माहिं।
वगा ढँढोरे माछरी, हंसा मोती खाहिं॥
जो हंसा मोती चुगै, काँकर क्यों पतियाइ।
काँकर माथा ना नवै, मोती मिलै तो खाइ॥
देह धरे को दंड है, सब काहू को होइ।
ज्ञानी भुगतै ज्ञान तें, मूरख भुगतै रोइ॥
ऐसी वानी वोलिये, मन का आपा खोइ।
औरन को सीतल करै, आपहुँ सीतल होइ॥

खूँदन तौ धरती सहै, काट-कूट बनराइ।
सन्त सहैं दुरजन-बचन, औरन सहा न जाइ॥

करगस सम दुरजन-वचन, रहै सन्त-जन टारि।
बिजरी परै समुद्र में, कहा सकैगी जारि ?॥

कबिरा, गुरु के मिलन की, बात सुनी हम दोइ।
कै साहिब को नाम लै, कै कर ऊँचा होइ॥

रितु वसन्त जाचक भया, हरखि दिया द्रुम पात।
तातें नव पल्लव भया, दिया दूर नहिं जात॥

जौ जल बाढ़ै नाव में, घर में बाढ़ै दाम॥
दोऊ हाथ उलीचिए, यहि सज्जन को काम॥

साईं इतना दीजिए, जामें कुटुम समाइ।
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु ना भूखा जाइ॥

साधू गाँठि न बाँधई, उदर-समाता लेइ।
आगे पाछे हरि खड़े, जब माँगे तब देइ॥

गोधन, गजधन, बाजिधन, और रतन धन खान।
जब आवै सन्तोषधन, सब धन धूरि समान॥

धीरे धीरे, रे मना, धीरे सब कुछ होइ।
माली सींचै सौ घड़ा, रितु आए फल जोइ॥

साँचे कोई न पतीजई, झूठे जग पतियाइ।
गली गली गोरस फिरै, मदिरा बैठि बिकाइ॥

कबिरा, गरव न कीजिए, इस जोवन की आस।
टेसू फूला दिवस दस, खखर भया पलास॥

चातक सुतहि पढ़ावही, आन नीर मत लेइ।
मम कुल यही सुभाव है, स्वाति-बूँद चित देइ॥
ऊँची जाति पपीहरा, पियै न नीचो नीर।
कै सुरपति को जाँचई, कै दुख सहै सरीर॥
करु बहियाँ बल आपनी, छाँड़ि बिरानी आस।
जाके आँगन है नदी, सो कस मरै पियास॥
साधु कहावन कठिन है, लंबा पेड़ खजूर।
चढ़े तो चाखे प्रेम-रस, गिरै तो चकनाचूर॥
हंसा बक इक रंग लखिय, चरैं एक ही ताल।
छीर नीर तें जानिए, बक उघरै तेहि काल॥
कबिरा सोई दिन भला, जा दिन संत मिलाहि।
अंक भरे, भरि भेंटिया, पाप सरीरां जाहि॥
खुलि खेलो संसार में, बाँधि न सक्कै कोइ।
घाट जगाती क्या करै, जो सिर बोझ न होइ॥

—:०:—

सूरदास
(काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के चित्र से)

२—सूरदास

जन्म-संवत्—१५४०　　　　　　　　　　मृत्यु संवत्—१६२८

व्रज-साहित्य के सबसे उज्ज्वल रत्न सूरदास हैं। दिल्ली के समीप सीही नामक ग्राम उनका-जन्म स्थान है। कुछ लोग यह कहते हैं कि रुनकता नाम गाँव में उनका जन्म हुआ था। उनके पिता का नाम रामदास कहा जाता है। यह भी कहा जाता है कि उनकी दृष्टि-शक्ति नष्ट हो गई थी और तभी से कदाचित् उनकी समस्त इन्द्रियाँ हरि की ओर आकृष्ट हो गई :—

सोई रसना जो हरि-गुन गावै।
नैनन की छवि यहै चतुरता, ज्यों मकरन्द मुकुंदहिं ध्यावै॥
निर्मल चित तो सोई साँचो, कृष्ण बिना जिय और न भावै।
स्रवननि की जु यहै अधिकाई, सुनि रस कथा सुधा-रस प्यावै॥
कर तेई जो स्यामहिं सेवै, चरनन चलि वृन्दावन जावै।
सूरदास जैये बल ताके, जो हरि जू सों प्रीति बढ़ावै॥

सूरदास जी के गुरू श्री वल्लभाचार्य थे। अपने गुरु पर उनकी अपार भक्ति थी। व्रजभाषा के आठ कवियों की अष्टछाप में उनका स्थान सर्व-श्रेष्ठ है। उनकी कविता सरस, सरल और हृदय-ग्राहिणी है। 'सूरसागर' उनका प्रसिद्ध ग्रन्थ है।

सूरदास ने सन्तों के निराकवाद और निवृत्ति-मार्ग को स्वीकार नहीं किया। उन्होंने वैष्णव-धर्म के यथार्थ तत्व को स्वीकार किया है। वह,

यह कि स्वयं जगदीश्वर जन्म लेकर मानव-जीवन के समस्त दुखों और वेदनाओं को स्वीकार करता है। सूरदास ने मानव-जीवन की दुर्बलता को स्वीकार कर उसे ईश्वर के आनन्द और प्रेम की अभिव्यक्ति के रूप में दिखलाया है। जीवन में जो सुख-दुख, हानि-लाभ और संयोग-वियोग को हम देखा करते हैं वह उसी की लीला है। इसी द्वन्द्व भाव से भगवान् हमारे आनन्द और प्रेम को परिपूर्ण करते हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी ने भगवान् रामचन्द्र जी के लीला-वर्णन में उनके ईश्वरत्व का बारम्बार स्मरण दिलाया है। उन्हें यही सन्देह था कि भगवान् की मानव-लीला को देखकर लोग उनके ईश्वरत्व को भूल न जायँ। परन्तु सूरदास जी भगवान् की लीलाओं का वर्णन करते समय स्वयं उनके ईश्वरत्व को भूल गए हैं। उनके वर्णन में पूर्ण मानव-जीवन है। वह जैसा है, ठीक वैसा ही उसका वर्णन है। उनकी रचना में कहीं भी संशय का स्पर्श नहीं है। भगवान् उनके सखा हैं, उनके साथी हैं, उनके सुख-दुख के सहचर हैं। उनकी रचनाओं से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे एक अनुरक्त सखा की भाँति कृष्णचन्द्र जी की लीलाओं का वर्णन कर रहे हैं। उनके वर्णन में प्रेम है, विलास है और भक्ति है—कहीं भी वियोग की व्याकुलता नहीं है। ऐसा जान पड़ता है कि मानों उन्होंने श्रीकृष्ण जी का सान्निध्य प्राप्त कर लिया था।

प्रसिद्ध ग्रन्थ—

१—सूरसागर

—:o:—

सूर-पदावली

(१)

अविगत गति कछु कहत न आवै ।
ज्यों गूँगे मीठे फल को रस अन्तरगत ही भावै ॥
परम स्वाद सबही जु निरन्तर अमित तोष उपजावै ।
मन बानी को अगम अगोचर सो जाने जो पावै ॥
रूप, रेख, गुन, जाति जुगुति बिनु निरालम्ब मन चकृत धावै ।
सब बिधि अगम बिचारत ताते सूर सगुन लीला पद गावै ॥

(२)

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै ।
जैसे उड़ि जहाज को पंछी फिरि जहाज पर आवै ॥
कमल-नैन को छाँड़ि महातम और देव को ध्यावै ।
परम गंग को छाँड़ि पियासो दुरमति कूप खनावै ॥
जिन मधुकर अम्बुज-रस चाख्यो क्यों करील फल खावै ।
'सूरदास' प्रभु कामधेनु तजि छेरी कौन दुहावै ॥

(३)

मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी ।
किती बार मोहि दूध पिवत भई यह अजहूँ है छोटी ॥
तू जो कहति बल की बेनी ज्यों, ह्वै है लांबी मोटी ।
काढ़त, गुहत, न्हावत, ओंछत, नागिन-सी भुइँ लोटी ॥

काचौं दूध पियावत पचि-पचि, देत न माखन रोटी ।
सूर स्याम चिरजिव दोउ भैया, हरि हलधर की जोटी ।।

(४)

आजु मैं गाय चरावन जैहौं ।
वृन्दावन के भाँति भाँति फल अपने कर मैं खैहौं ।।
ऐसी वात कहो जनि वारे देखो अपनी भाँति ।
तनक तनक पग चलिहौ वैसे, आवत ह्वै है राति ।।
प्रात जात गैयाँ लै चारन, घर आवत हैं साँझ ।
तुम्हरो कमल वदन कुम्हलैहैं, घूमत घामहि माँझ ।।
तेरी सौं मोहि, घाम न लागत, भूख कहूँ नहिं नेक ।
'सूर' स्याम प्रभु कह्यो न मानत, परे आपनी टेक ।।

(५)

मैया मैं न चरैहौं गाइ ।
सिगरे ग्वाल घिरावत मोसौं मेरे पाँय पिराइ ।।
जो न पत्याहु पूछ वलदाउहि अपनी सौंह दिवाइ ।
मैं पठवति अपने लरका कूँ आवे मन वहराइ ।
'सूर' स्याम मेरो अति वालक मारत ताहि रिगाइ ।

(६)

मैया मोहि दाऊ वहुत खिझायो ।
मोसों कहत मोल को लीनो तोहि जसुमति कव जायो ।
कहा कहौं यहि रिस के मारे हौं खेलन नहिं जात ।

(७१)

पुनि पुनि कहत कौन है माता, कौन तिहारो तात।
गोरे नंद, यशोदा गोरी, तुम कत श्याम शरीर।
छुटकी दै दै हँसत ग्वाल सब, सिखै देत बलवीर।
तू मोहीं को मारन सीखी, दाउहिं कबहुँ न खीझै।
मोहन को मुख रिस-समेत लखि, जसुमति मन अति रीझै।
सुनहु कान्हु बलभद्र चबाई; जनमत ही को धूत।
'सूर' श्याम मो गोधन की सौं, हौं माता तू पूत।

(७)

यशोदा, तेरो भलो हियो है माई।
कमल-नयन माखन के कारण बाँधे ऊखल लाई।
जो सम्पदा देव-मुनि दुर्लभ सपनेउ दे न दिखाई।
याही तें तू गर्व भरी है घर बैठे निधि पाई।
तब काहू को सुत रोवत सुनि दौरि लेति हिय लाई।
अब काहे घर के लरिका सों करत इती जड़ताई।
बारम्बार सजल लोचन करि रोवत कुँवर कन्हाई।
कहा करौं बलि जाउँ, छोरती तेरी सौंह दिवाई।
जो मूरति जल थल में व्यापक, निगम न खोजत पाई।
सो जसुमति अपने आँगन में दै करताल नचाई।
सुर-पालक सब असुर सँहारक, त्रिभुवन जाहि डराई।
'सूरदास' प्रभु की यह लीला निगम नेति नित गाई।

(८)

मैया मोरी, मैं नहिं माखन खायो ।

भोर भये गैयन के पाछे, मधुवन मोहि पठायो।
चार पहर वंशीवट भटक्यो, साँझ परे घर आयो।
मैं बालक बँहियन को छोटो, सींको केहि विधि पायो।
ग्वाल-बाल सब बैर परे हैं, बरबस मुख लपटायो।
तू जननी मन की अति भोरी, इनके कहे पतियायो।
जिय तेरे कछु भेद उपजत है, जान परायो जायो।
यह लै अपनी लकुट कमरिया, बहुतै नाच नचायो।
'सूरदास' तब विहँसि जसोदा, लै उर-कंठ लगायो।

(९)

नैना ढीठ अति ही भए।

लाज लकुट दिखाइ त्रासैं तौहूँ यै न नए।
तोरि पलक कपाट घूँघट ओट भेंटि गए।
मिले हरि को जाइ आतुर जेहैं गुननि गए।
मुकुट कुण्डल पीत पट कटि ललित भेस ठए।
जाइ लुब्धे निरखि वह छवि 'सूर' नन्द जए।

(१०)

प्रीति करि काहू सुख न लह्यो।

प्रीति पतंग करी दीपक सों, आपै प्रान दह्यो।
अलिसुत प्रीति करी जलसुत सों, सम्पुट हाथ गह्यो।

सारँग प्रीति करी जो नाद सों, सन्मुख बाण सह्यो।
हम जो प्रीति करी माधव सों, चलत न कछू कह्यो।
'सूरदास' प्रभु बिन दुख दूनो, नैनन नीर बह्यो।

(११)

नैना भये अनाथ हमारे।
मदन-गोपाल उहाँतें सजनी, सुनियत दूर सिधारे।
वै हरि जल हम मीन बापुरी कैसे जिवहिं निनारे।
हम चातक-चकोर, श्याम घन, बदन सुधानिधि प्यारे।
मधुबन बसत आस दरसन की जोइ नैन मग हारे।
'सूर' श्याम कीन्हीं पिय ऐसी, मृतक हुते पुनि मारे।

(१२)

कहाँ लौं कीजै बहुत बड़ाई।
अति अगाध मन अगम अगोचर मनसों तहाँ न जाई।
जा के रूप न रेख बरन् वपु नाहिन सखा सहाई।
ता निर्गुण सो नेह निरन्तर क्यों निबहै री माई।
जल बिन तरँग भीति बिन लेखन बिन चेतहि चतुराई।
या व्रज में कछु चाह है ऊधो आनि सुनाई।
मन चुभि रह्यो माधुरी मूरति, अंग अग उरझाई।
सुन्दर श्याम कमलदल लोचन 'सूरदास' सुखदाई।

(१३)

ऊधो, मोहिं व्रज बिसरत नाहीं।
हंससुता की सुन्दर कंगरी अरु कुञ्जन की छाहीं॥

वे सुरभी, वे बच्छ, दोहनी, खरिक दुहावन जाहीं।
ग्वाल-बाल सब करत कोलाहल नाचत गहि-गहि बाहीं।
यह मथुरा कंचन की नगरी, मनि मुकताहल जाहीं।
जबहि सुरति आवत वा सुख की जिय उमगत तनु नाहीं।
अनगन भाँति करी बहु लीला जसुदा नन्द निबाहीं।
'सूरदास' प्रभु रहे मौन ह्वै, यह कहि कहि पछिताहीं॥

(१४)

छाँड़ि मन, हरि-विमुखन को संग।
जाके संग कुबुधि उपजति है, परत भजन में भंग॥
कहा भयो पय-पान कराये, विख नहिं तजत भुजंग।
कागहि कहा कपूर चुगाये, स्वान न्हवाये गंग॥
खर को कहा अरगजा-लेपन, मरकट भूषन अंग।
गज को कहा न्हवाये सरिता, बहुरि धरै खहि छंग॥
पाहन पतित बान नहिं भेधत, रीतो करत निषंग।
'सूरदास' खल कारी कामरि, चढ़त न दूजो रंग॥

(१५)

ऐसी प्रीति की बलि जाऊँ।
सिंहासन तजि चले मिलन को सुनत सुदामा नाऊँ॥
गुरु-बांधव अरु विप्र जानि कै हाथनि चरन पखारे।
अंक माल दै, कुसल बूझि कै, अर्धासन बैठारे॥
अर्धांगी बूझति मोहन सौं कैसे हितू तिहारे।
दुरबल, दीन, छीन देखति हौ पाउँ कहाँ तैं धारे॥

संदीपन के हम औ सुदामा पढ़े एक चटसार।
'सूर' स्याम की कौन चलावै भगतनि कृपा अपार॥

(१६)

हम भक्तन के भक्त हमारे।
सुनु अर्जुन परतिज्ञा मेरी, यह व्रत टरत न टारे॥
भक्तन काज लाज हिय धरि के पाइ पयादे धाये।
जहँ जहँ भीर परी भक्तन पै तहँ तहँ जाइ छुड़ाये॥
जो मम भक्त सों वैर करत है सो निज बैरी मेरो।
देखि विचारि भक्त हित कारन, हाँकत हौं रथ तेरो॥
जीते जीत भक्त अपने की हारे हारि विचारौं।
'सूरदास' सुनि भक्त विरोधी, चक्र-सुदर्शन जारौं॥

—:०:—
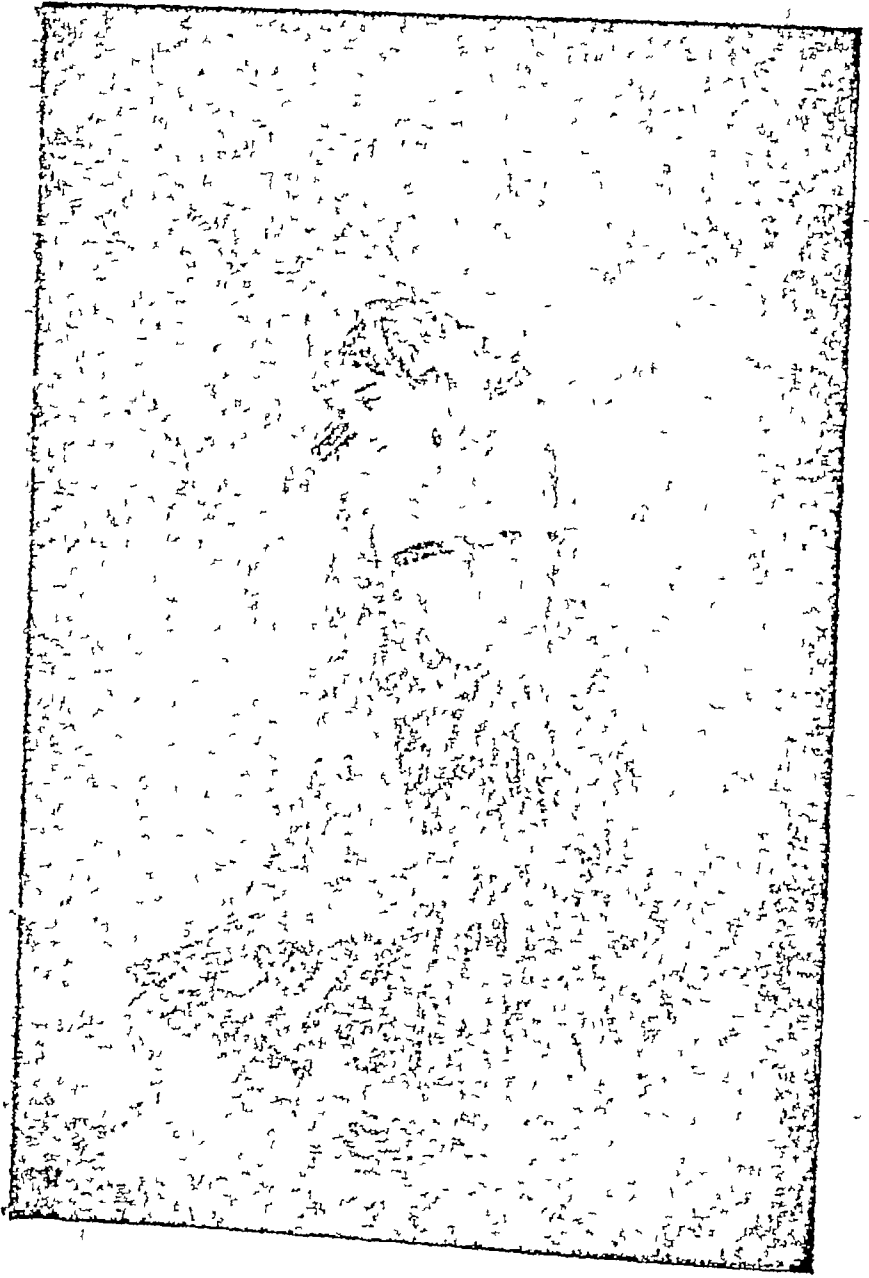
मीराबाई

३—मीराबाई

जन्म संवत् अनुमानतः—१५५५] [मृत्यु संवत् अनुमानत.—१६२५

मीराबाई के जन्म-मरण के संवत् और उनके पिता तथा पति के नाम आदि विवादग्रस्त हैं। पर जन्म लगभग संवत् १५५५ में और मृत्यु लगभग सं० १६२५ में मानी जा सकती है। ये जोधपुर मेड़ता के राठौर रतनसिंह की बेटी तथा उदयपुर के महाराना साँगा जी के कुँवर भोजराज जी की धर्मपत्नी थीं। कुछ लोगों का विचार है कि यह राणा कुम्भ की पत्नी थीं। पर यह ठीक नहीं है।

कहा जाता है कि विवाह के दस वर्ष बाद ये विधवा हो गईं। इन्होंने रैदास का शिष्यत्व ग्रहण किया। श्रीकृष्ण को ही अपना पति मान लिया। ये अहर्निश कृष्ण के ही प्रेम में मतवाली रहती थीं। इनका प्रेम अगाध था। इनके पदों से इनकी हार्दिक भक्ति प्रगट होती है। यह लोकलाज छोड़ कर साधुसेवा में तल्लीन हो गईं थीं। इससे इनके देवर राणा विक्रमाजीत को बहुत दुःख हुआ। उन्होंने इन्हें मारने के लिये जहर का प्याला भेजा जिसे इन्होंने प्रेम से अमृत के समान पी लिया। भगवान की कृपा से उसका इनपर कोई असर न हुआ। ये संस्कृत भी जानती थीं इनके प्रसिद्ध ग्रन्थ —गीत गोविन्द की टीका, नरसी जी का मायरा, और रागगोविन्द बतलाये जाते हैं। इनकी भाषा राजपुतानी मिश्रित है। इन्होंने गुजराती में कविता की है। इनके पद बड़े ही सरस हैं।

—:०:—

मीराबाई

(१)

बसो मेरे नैनन में नँदलाल।
मोहनि मूरति सॉवरि सूरति नैना बनै विसाल।
अधर सुधारस मुरली राजति उर वैजन्ती माल॥
छुद्र घंटिका कटि-तट सोभित नूपुर शब्द रसाल।
"मीरा" प्रभु संतन सुखदाई भक्त वछल गोपाल॥

(२)

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई।
दूसरा न कोई साधो सकल लोक जोई॥
भाई छोड्या बंधु छोड्या छोड्या सगा सोई।
साधु संग बैठि बैठि लोक लाज खोई॥
भगत देख राजी हुई जगत देख रोई।
अँसुवन जल सींच सींच प्रेम बेल बोई॥
दधि मथ घृत काढ़ लियो डार दई छोई।
राणा विप को प्यालो भेज्यो पीय मगन होई॥
अब तो बात फैल गई जाणे सब कोई।
'मीरा' राम लगन लागी होणी होय सो होई॥

(३)

नहिं ऐसो जन्म बारम्बार ।

क्या जानूँ कछु पुन्य प्रकटे, मानुसा अवतार ।
बढ़त पल पल घटत छिन छिन, चलत न लागे वार ।
बिरछ के ज्यों पात टूटे, लागे नहि पुनि डार ।
भौ सागर अति जोर कहिये, बिषय ओखी धार ।
सुरत का नर बाँधे बेड़ा, वेगि उतरे पार ।
साधु संता ते महंता, चलत करत पुकार ।
दास मीरा लाल गिरिधर, जीवना दिन चार ॥

(४)

मन रे परसि हरि के चरन ।

सुभग सीतल कमल कोमल, त्रिविध ज्वाला हरन ॥
जे चरन प्रहलाद परसे, इन्द्र पदवी धरन ।
जिन चरन ध्रुव अटल कीन्हों, राखि अपने सरन ॥
जिन चरन ब्रह्माण्ड भेंट्यो, नखसिखौ श्री भरन ।
जिन चरन प्रभु परसि लीने, तरी गौतम घरन ॥
जिन चरन कालीहि नाथ्यो, गोप लीला करन ।
जिन चरन धार्‌यो गोवर्द्धन, गरब मघवा हरन ॥
'दासि मीरा' लाल गिरधर, अगम तारन तरन ॥

(५)

चलो, मन, गंगा-जमुना तीर ।

गंगा जमुना निरमल पानी, सीतल होत सरीर ।

बंसी बजावत, गावत, कान्हो संग लियाँ बलबीर।
मोर-मुकुट पीताम्बर सोहै, कुण्डल झलकत हीर।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, चरण-कँवल पै सीर॥

(६)

या ब्रज में कछु देख्यो री टोना।
लै मटकी सिर चली गुजरिया, आगे मिले बाबा नन्द को छोना।
दधि को नाम बिसरि गयो प्यारी, 'ले लेहुरी कोई स्याम सलोना'।
बिन्द्रावन की कुञ्ज-गलिन में, नेह लगाइ गयो मनमोहना।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, सुन्दर स्याम सुघर रस-लोना॥

(७)

म्हारा ओलगिया घर आया।
तनकी ताप मिटी, सुख पाया, हिलमिल मंगल गाया।
घन की धुनि सुनि मोर मगन भया, यूँ मेरे आनँद आया॥
मगन भई मिलि प्रभु अपनासूँ, भौं का दरद मिटाया।
चंद कूँ देखि कमोदनि फूलै, हरख भया मेरी काया॥
रग-रग सीतल भई मेरी सजनी, हरि मेरे महल सिधाया।
सब भगतन का कारज कीन्हा, सोई प्रभु मैं पाया।
मीरा बिरहिनि सीतल होई दुख-दुँद दूर न्हसाया॥

(८)

भज मन चरन-कँवल अविनासी।
जेतइ दीसै धरण-गगन बिच, तेतइ सब उठ जासी।
इस देही का गरब न करना माटी में मिल जासी॥

यो संसार चहर की बाजी, साँझ पड्याँ उठ जासी।
कहा भयो तीरथ-व्रत कीने, कहा लिये करवत कासी ?
कहा भयो है भगवा पहर्‌याँ, घर तज भये सँन्यासी ?
जोगी होय जुगत नहिं जानी, उलटि जनम फिर आसी॥
अरज करौं अबला कर जोरे, स्याम तुम्हारी दासी।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, काटो जम की फाँसी॥

—:०:—

४—बिहारी

जन्म-संवत्—१६६०] [मृत्यु संवत —१७२०

बिहारी का जन्म-स्थान ग्वालियर के समीप बसुआ गोविन्दपुर नामक ग्राम माना जाता है। जयपुर के महाराज जयसिंह के आश्रम में उन्होंने अपना जीवन-यापन किया। उनकी राज-सभा मे बिहारी का बड़ा आदर था।

बिहारीलाल का जीवन-काल राज-सभा में व्यतीत हुआ था। उन्हे राज-सभा का पूरा अनुभव था। उन्होंने अपने अनुभव को अपनी कविताओं में प्रकट भी किया है। यदि उन्होंने श्रीमानो के वैभव और उनकी उदारता आदि गुणों की प्रशसा की है तो उन्होंने उनकी विलास-प्रियता और दाम्भिकता आदि दुर्गुणों की निन्दा भी की है। उनके विषय में यह कथा प्रसिद्ध है कि जब राजा जयसिंह विलास मे पड़कर अपने कर्त्तव्य से पराङ्-मुख हो गये थे, तब उन्होंने एक पद्य द्वारा उनको चेतावनी दी थी। श्रीमानो की मदान्धता की उन्होंने सदैव तीव्र निन्दा की है। जो लोग अयोग्य होकर भी अपनी मर्मज्ञता बतलाने का साहस करते हैं, उनका भी उन्होंने खूब उपहास किया है। जान पडता है कि उन्हे अपने जीवन के अन्तकाल मे भव-बाधा से ग्रस्त होना पडा, फिर भी उन्हे आशा थी

कि कभी फिर अच्छे दिन आवेंगे। कहा नही जा सकता कि उनके जीवन में फिर वसन्त आया या नहीं, परन्तु उनके पद्यों से यह प्रकट होता है कि उन्हें संसार और सांसारिक वैभव से विरक्ति हो गई थी।

बिहारी रस-सिद्ध कवीश्वर माने गये हैं। साहित्य-शास्त्र में रस कवित्व की आत्मा है। भाषा और छन्द उसके अवयव हैं और अलंकार उसके भूषण। विहारी ने क्या वाह्यजगत और क्या अन्तर्जगत, सर्वत्र एक सौन्दर्य का अनुभव किया है। यही कारण है कि उनकी कला में कृत्रिमता का अभाव है। उनमें उक्ति-वैचित्र्य है, भाव की सूक्ष्मता है और सौन्दर्य विशद चित्रण है—जहाँ-जहाँ उन्होंने अलकार का प्रयोग किया है, वहाँ-वहाँ वह इतने स्वाभाविक ढंग से हुआ है कि यह नहीं जान पड़ता कि उनकी उक्ति में भाव का चमत्कार अधिक है अथवा अलंकार का। भाव के साथ अलंकार का उचित समावेश उनकी सबसे बड़ी विशेषता है। शृङ्गार रस के वर्णन में उन्होंने सर्वत्र एक प्रकार के संयम से काम लिया है, जिसके कारण उनकी कविता शील की सीमा को अतिक्रमण नहीं करती। उनकी नायिकाएँ उच्छृङ्खल नहीं है। उनके नेत्र लाज रूपी लगाम को भले ही न माने पर देखने का अवसर आने पर वे देखते भी नहीं। उनके चित्त की अवस्था ऐसी है कि 'श्याम' रंग में डुबाने से उनमें उज्ज्वलता आती है। उनके हृदय में नायक का सदैव निवास रहता है—जिसके कारण वे अपनी सखियों से मान-विधि भी नहीं सीखना चाहते।

भक्त-कवि और शृङ्गार-रस के आचार्य दोनों ने अपनी रचनाओं में श्रीकृष्ण को ही आदर्श माना है। पर दोनों की अनुभूतियों में जो भेद है, वह स्पष्ट है। भक्त-कवियों के प्रेम मे सर्वस्व समर्पण का भाव है और

शृङ्गार-रस के कवियों में कामना का आवेश। भक्त कवियों की रचना में प्रेम की तन्मयता है और शृङ्गार-रस के कवियों मे प्रेम की विमुग्धावस्था है।

प्रसिद्ध ग्रन्थ—

१—बिहारी सतसई

—:०:—

दोहावली

सघन कुञ्ज छाया सुखद, सीतल मंद समीर।
मन ह्वै जत अजौं वहे, वा जमुना के तीर॥
जहाँ जहाँ ठाढ़ो लख्यो, स्याम सुभग सिर मौर।
उनहूँ विन छिन गहि रहत, दृगनि अजहुँ वह ठौर॥
सोहत ओढ़े पीत पट, स्याम सलोने गात।
मनो नील मनि सैल पर, आतप पर्‌यो प्रभात॥
अधर धरत हरि के परत, ओठ दीठ पट जोति।
हरित बाँस की बाँसुरी, इन्द्रधनुष सी होति॥
लिखन बैठि जाकी छबिहिं, गहि गहि गरब गरूर।
भये न केते जगत के, चतुर चितेरे क्रूर॥
या अनुरागी चित्त की, गति समझै नहि कोय।
ज्यों ज्यों बूड़ै स्याम रंग, त्यों त्यों उज्वल होय॥
देखौ जागित वैसिये, सांकर लगी कपाट।
कित ह्वै आवत जाति भजि, को जानै केहि बाट॥
नैना नेकु न मानहीं, कितो कहौ समझाय।
तन मन हारे हू हँसै, तिनसों कहा बसाय॥
लाज लगाम न मानहीं, नैना मो बस नाहिं।
ये मुँहजोर तुरंग लौं, ऐंचत हू चलि जाहिं॥

इन दुखिया अँखियान को, सुख सिरजोई नाहिं।
देखत बनै न देखते, बिन देखे अकुलाहिं ॥
मनमोहन सों मोह कर, तू घनश्याम निहारि।
कुञ्जबिहारी सो बिहरि, गिरधारी उर धारि ॥
ब्रज बासिन को उचित धन, जो धन रुचित न कोय।
सुचित न आयो सुचितई, कहौ कहाँ ते होय ॥
नीकी दई अनाकनी, फीकी परी गुहारि।
तज्यो मनो तारन बिरदु, बारक बारनु तारि ॥
थोरेई गुन रीझते, बिसराई वह बानि।
तुम्हू कान्ह मनो भये, आज कालि के दानि ॥
कब को टेरत दीन रट, होत न स्याम सहाय।
तुमहु लागी जगतगुरु, जगनायक जग बाय ॥
कीजै चित सोई तरे, जिहि पतितन के साथ।
मेरे गुन औगुन गनन, गनो न गोपी-नाथ ॥
कोऊ कोरिक संग्रहौ, कोऊ लाख हजार।
मो सम्पति जदुपति सदा, बिपति बिदारन हार ॥
ज्यौं है हौं त्यों होहुँगो; हौं हरि अपनी चाल।
हठ न करो अति कठिन है, मो तारिबो गोपाल ॥
करौ कुबत जग कुटिलता, तजौ न दीनदयाल।
दुखी होहुगे सरल चित, बसत त्रिभंगीलाल ॥
मोहि तुम्हें बाढ़ी बहस, को जीते जदुराज।
अपने अपने बिरद की, दुहुन निबाहन लाज ॥

निज करनी सकुचेहि कत, सकुचावत इहिं चाल।
मोहू तें नित विमुख त्यों, सन्मुख रहि गोपाल॥
हौं अनेक अवगुन भरी, चाहै याहि बलाय।
जो पति सम्पति हू बिना, जदुपति राखे जाय॥
हरि कीजत तुमसों यहै, विनती बार हजार।
जेहि तेहि भाँति डरो रहौं, परो रहौं दरबार॥

—:०:—
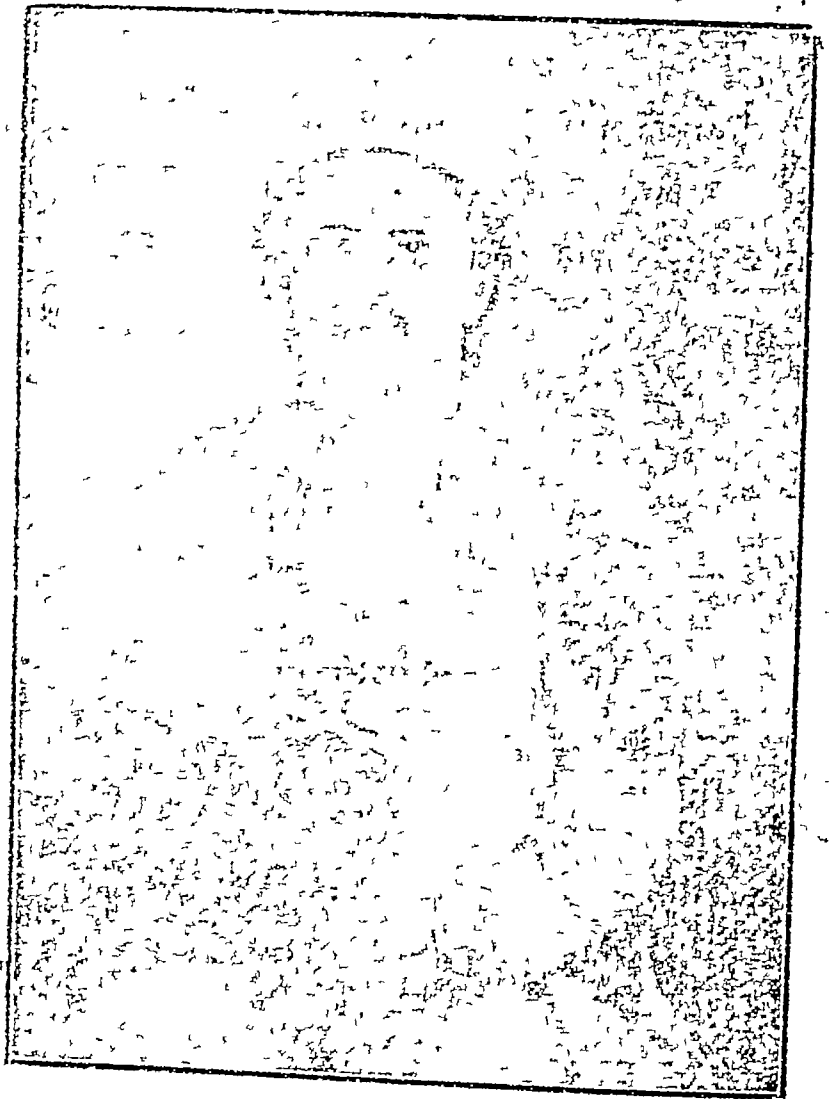
भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

५—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

जन्म-संवत्—१९०७] [मृत्यु संवत्—१९४२

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र जी का जन्म-स्थान काशी है। वे इतिहास प्रसिद्ध सेठ अमीचदके वंशज थे। उनके पिता गोपालचन्द भी अच्छे कवि थे। कविता मे उन्होने अपना उपनाम 'गिरधर' रक्खा था। बाल्यावस्था मे ही भारतेन्दु बाबू के माता-पिता का देहावसान हो जाने के कारण उनकी शिक्षा का अच्छा प्रबन्ध नहीं हो सका, पर उनकी बुद्धि इतनी तीव्र थी कि साहित्य मे उन्होने अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली। उनके विचार बड़े उदार थे और अपनी उदारता के कारण वे अपव्यय भी करते थे, इसी से अपने जीवन के अन्तिमकाल मे उन्हे कष्ट सहना पड़ा। ३५ वर्ष की उम्र में ही उनकी मृत्यु हो गई।

भारतेन्दु जी आधुनिक हिन्दी-साहित्य के जन्मदाता हैं। हिन्दी के गद्य-साहित्य का स्वरूप उन्हीं के द्वारा निश्चित हुआ। उन्ही के द्वारा प्रदर्शित पथ पर चलकर ही आज हिन्दी-साहित्य उत्तरोत्तर उन्नति करता चला जा रहा है। उन्होंने ही पहले नाटक लिखे, इतिहास तथा निबन्धों की रचना की, पत्रिकाएँ निकाली, कवियो और लेखकों का एक बड़ा मण्डल तैयार किया तथा हिन्दी-साहित्य मे एक नये आदर्श का निर्माण किया। कविता के क्षेत्र मे उन्होने रीतिकाल के कवियो का ही अनुकरण किया है। उनकी कविताओं में वही प्रेम, वही भाषा-माधुर्य्य और वही भाव-सौन्दर्य है। परन्तु उन्होंने देश की वर्त्तमान अवस्था पर

भी कविताएँ लिखी हैं। उनके प्रकृति-वर्णन में प्रकृति का यथार्थ चित्रण है। इस प्रकार कल्पना के क्षेत्र में वस्तुवाद की प्रतिष्ठा हुई और सामयिक कविताओं का प्रचार बढ़ा। कविता के नायक एकमात्र राधा-कृष्ण नहीं रहे; अन्य विषयों पर भी कविताएँ लिखी जाने लगीं। यही कारण है कि भारतेन्दु जी हिन्दी के युग-प्रवर्तक कवि माने जाते हैं।

प्रसिद्ध ग्रन्थ—

१—मुद्राराक्षस
२—सत्यहरिश्चन्द्र
३—चन्द्रावली
४—भारत-दुर्दशा
५—सुन्दरीतिलक

—:o:—

यमुना-छवि

(१)

तरनि-तनूजा-तट तमाल-तरुवर बहु छाये।
झुके कूल सौं जल-परसन-हित मनहुँ सुहाये॥
किधौं मुकुर में लखत उझकि सब निज निज सोभा।
कै प्रनवत जल जानि परम पावन फल-लोभा॥
मनु आतप-बारन तीर कौं, समिटि छवै छाये रहत।
कै हरि-सेवा-हित नै रहे, निरखि नैन, मन सुख लहत॥

(२)

कहूँ तीर पर कमल अमल सोभित बहु भाँतिन।
कहुँ सैवालन मध्य कुमुदिनी लगि रहि पाँतिन॥
मनु दृग धारि अनेक जमुन निरखत ब्रज-सोभा।
कै उमगे पिय-प्रिया प्रेम के अनगिन गोभा॥
कै करि कर बहु पीय कौं, टेरत निज ढिग सोहई।
कै पूजन को उपचार लै, चलति मिलन मन मोहई॥

(३)

कै पिय-पद-उपमान जानि एहि निज उर धारत।
कै मुख करि बहु भृङ्गन-मिस अस्तुति उच्चारत॥

कै ब्रज-तिय-गन-वदन-कमल की झलकति झाईं।
कै ब्रज-हरि-पद-परस-हेतु, कमला बहु आईं॥
कै सात्विक अरु अनुराग दोउ, ब्रज-मंडल बगरे फिरत।
कै जानि लच्छिमी-भौन एहि करि सतधा निज जल धरत॥

(४)

तिन पै जेहि छिन चंद-जोति राका-निसि आवति।
जल मैं मिलि कै नभ-अवनी लौं तान तनावति॥
होत मुकुरमय सबै तबै उज्जल जल-ओभा।
तन-मन-नैन जुड़ात देखि सुन्दर सो सोभा॥
सो को कवि, जो छबि कहि सकै, ता छन जमुना-नीर की
मिलि अवनि और अम्बर रहत, छवि इक-सी नभ-तीर की।

(५)

परत चंद-प्रतिबिंब कहूँ जल-मधि चमकायौ।
लोल लहर लहि नचत कबहुँ सोई मन भायौ॥
मनु हरि-दरसन-हेत चंद जल बसत सुहायौ।
कै तरंग कर मुकुर लिये सोभित छबि छायौ॥
कै रास-रमन मैं हरि-मुकुट-आभा जल दिखरात है।
कै जल-उर हरि-मूरति बसत, ता प्रतिबिंब लखात है॥

(६)

कबहुँ होत सत चंद, कबहुँ प्रगटत दुरि भाजत।
पवन-गवन-बस बिंब-रूप जल मैं बहु साजत॥

मनु ससि भरि अनुराग जमुन-जल लोटत डोलै।
कै तरंग की डोर हिंडोरन करत किलोलै॥
कै बाल-गुड़ी नभ में उड़ी; सोहत इत-उत धावती।
कै अवगाहत डोलत कोऊ, ब्रज-रमनी जल आवती॥

(७)

मनु जुग पच्छ प्रतच्छ होत,मिटि जात, जमुन-जल।
कै तारागन ठगन लुकत-प्रगटत ससि अविकल॥
कै कालिंदी-नीर-तरंग जिते उपजावत।
तितनो ही धरि रूप मिलन-हित तासौं धावत॥
कै बहुत रजत-चकई चलत, कै फुहार-जल उच्छरत।
कै निसि-पति मल्ल अनेक बिधि उठि बैठत, कसरत करत॥

(८)

कूजत कहुँ कलहंस, कहूँ मज्जत पारावत।
कहुँ कारण्डव उड़त, कहूँ जल-कुक्कुट धावत॥
चक्रवाक कहुँ बसत, कहूँ बक ध्यान लगावत।
सुक-पिक जल कहुँ पियत, कहूँ भ्रमरावलि गावत॥
कहुँ तट पै नाचत मोर बहु, रोर बिबिध पच्छी करत।
जल-पान, न्हान करि सुख-भरे, तट-सोभा सब जिय धरत॥

(९)

कहूँ बालुका बिमल सकल कोमल बहु छाई।
उज्जल झलकत रजत-सीढ़ि मनु सरस सुहाई॥

प्रिय के आगम-हेत पाँवड़े मनहु बिछाये।
रतन-रासि की चूर कूल में मनु बगराये॥

मनु सुभ-माँग सोभित भरी, स्याम-नीर-चिकुरन परसि
रजगुन छायो कै नीर में, ब्रज-निवास लखि हिय हरसि।

— ० —

तृतीय भाग

मैथिलीशरण गुप्त

१—मैथिलीशरण गुप्त

आधुनिक हिन्दी कवियों में सबसे अधिक प्रसिद्धि बाबू मैथिलीशरण गुप्त की है। उन्हीं की रचनायें सबसे अधिक लोक-प्रिय हैं। उनके कारण उनका जन्म-स्थान चिरगाँव (झाँसी) भी प्रसिद्ध हो गया है। आधुनिक युग की सभी भावनाएँ उनकी कृतियों में विद्यमान हैं। देश-भक्ति, आत्म-सुधार, स्वालम्बन, विश्व-प्रेम, उच्चादर्श, देशाभिमान और स्वधर्मानुराग ये ही सब भाव उनकी कविताओं में मूर्तिमान हैं।

अपने कविता-काल के प्रारम्भ से लेकर आज तक गुप्त जी सभी प्रकार के पाठकों में लोक-प्रिय बने हुए हैं। पहले-पहल ब्रज-साहित्य के कल्पनोन्माद के विरुद्ध जो एक प्रतिक्रिया आरम्भ हुई, वह सबसे प्रथम मैथिलीशरण जी की रचनाओं में ही बिल्कुल स्पष्ट हुई। उनकी 'भारत भारती' में देश का यथार्थ चित्रण हुआ है। इसके बाद पौराणिक कहानियों को लेकर उन्होंने जो काव्य-कथाएँ लिखीं, उनमें सर्वत्र मानवी भावों की ही प्रधानता रखी। तुलसीदास जी ने संसार में भगवान का दर्शन करवाया-मनुष्य-जीवन में देवत्व का प्रदर्शन किया। गुप्त जी की यह विशेषता है कि उन्होंने देवों में मानवी भावों की प्रतिष्ठा की। मनुष्यों की समस्त दुर्बलताएँ और क्षमताएँ उनके देव-तुल्य पात्रों में प्रकट हुई हैं। 'साकेत' की लोक-प्रियता का सबसे बड़ा कारण यही है। उसमें उर्मिला की गूढ़ व्यथा, सीता का प्रेम, राम और लक्ष्मण की स्नेह-जन्य

दुर्वलता, ये सब ऐसी बातें हैं, जो गुप्त जी के पात्रों को हमारे अत्यधिक निकट ला देती हैं। राम और सीता उनके आराध्य देव हैं—उनसे उनके हृदय में आतङ्क, विस्मय और भक्ति का उद्रेक हो सकता है। किन्तु गुप्त जी के चरित्र-चित्रण की यह विशेषता है कि इन्हीं पात्रों से पाठकों के हृदय में सह-वेदना और सहानुभूति के भाव जाग्रत होते हैं।

आधुनिक युग में सत्य की परीक्षा-प्रारम्भ होने पर, लोग अपने अन्तर्जगत की यथार्थ परीक्षा करने पर उद्यत हुए, तब उन्होंने वहाँ एक अतीन्द्रिय जगत का आभास पाया। वह जगत अस्पष्ट रहने पर भी उतना ही यथार्थ है, जितना वाह्यजगत। उसके प्रभावों का हम लोग अपने जीवन में अनुभव करते रहते हैं। जिस प्रकार अतीतकाल के चरित्र जीवन पर अक्षय प्रभाव डालते हैं, उसी प्रकार हम लोग अपने जीवन में यह भी अनुभव करते हैं कि हम जो कुछ देख रहे हैं—उसी में हमारा अन्त नहीं है, इसके अतिरिक्त भी हमारा एक जीवन है और उस जीवन का सम्बन्ध हमारे वर्तमान जीवन से है। इसी रहस्यमय जीवन को स्पष्ट करने के लिये हिन्दी में वस्तुवाद के विरुद्ध जो एक प्रतिक्रिया आरम्भ हुई वह कवियों की रचनाओं में छायावाद के नाम से प्रकट हुई। लोग मानों यथार्थ जगत की सीमाबद्ध मानव-लीला से विरक्त होकर किसी असीम या अनन्त जीवन की प्राप्ति के लिये व्यग्र हो उठे। यह व्यग्रता छायावाद की रचनों में प्रकट हुई है। गुप्त जी की रचनाओं में भी हम उस भाव का पूर्वाभास पाते हैं, जो पीछे से छायावाद का नाम ग्रहण कर थोड़े ही दिनों में हिन्दी के वर्तमान कवियों में अत्यन्त लोक-प्रिय हुआ है। इस प्रकार हम देखते हैं कि गुप्त जी की कविताओं में जहाँ एक

ओर देश की उच्चतम आकांक्षा की ध्वनि है, वहाँ दूसरी ओर नवयुग की सभी भावनायें भी स्थान पा चुकी हैं। गुप्त जी वर्तमान युग के एकमात्र प्रतिनिधि कवि हैं।

प्रसिद्ध ग्रंथ—

१—भारत भारती
२—जयद्रथ-वध
३—यशोधरा
४—साकेत
५—द्वापर
६—मंगल-घट
७—झंकार
८—चन्द्रहास (नाटक)
९—सिद्धराज

—:०:—

पंचवटी में लक्ष्मण

[१]

चारु चन्द्र की चंचल किरणें
खेल रहीं हैं जल-थल में,
स्वच्छ चाँदनी बिछी हुई है,
अवनि और अंबर-तल में।
पुलक प्रकट करती है धरती
हरित तृणों की नोकों से,
मानों झीम रहे हैं तरु भी
मन्द पवन के झोकों से॥

[२]

पंचवटी की छाया में है
सुन्दर पर्ण-कुटीर बना,
उसके सम्मुख स्वच्छ शिला पर
धीर, वीर निर्भीक-मना,
जाग रहा यह कौन धनुर्धर,
जब कि भुवन-भर सोता है?
भोगी कुसुमायुध योगी-सा
बना दृष्टि-गत होता है॥

[३]

किस व्रत में है व्रती वीर यह
निद्रा का यों त्याग किये ?
राज-भोग के योग विपिन में
बैठा आज विराग किये ?
बना हुआ है प्रहरी जिसका
उस कुटीर में क्या धन है,
जिसकी रक्षा में रत इसका
तन है, मन है, जीवन है ?

[४]

मर्त्यलोक-मालिन्य मेटने
स्वामि-संग जो आई है,
तीन लोक की लक्ष्मी ने यह
कुटी आज अपनाई है।
वीरवंश की लाज यही है,
फिर क्यों वीर न हो प्रहरी ?
विजन देश है, निशा—शेष है,
निशाचरी माया ठहरी !

[५]

कोई पास न रहने पर भी
जन-मन मौन नहीं रहता,

आप आपकी सुनता है वह,
आप आपसे है कहता।
बीच-बीच में इधर-उधर निज
दृष्टि डालकर मोदमयी
मन ही मन बातें करता है
वीर धनुर्धर नयी-नयी—

[६]

क्या ही स्वच्छ चाँदनी है यह,
है क्या ही निस्तब्ध निशा;
है स्वच्छंद सुमंद गंध वह,
निरानंद है कौन दिशा?
बंद नहीं अब भी चलते हैं,
नियति-नटी के कार्य-कलाप,
पर कितने एकांत भाव से,
कितने शांत और चुपचाप!

[७]

है बिखेर देती वसुन्धरा
मोती सबके सोने पर,
रवि बटोर लेता है उनको
सदा सवेरा होने पर,
और विरामदायिनी अपनी
संध्या को दे जाता है;

शून्य श्याम तनु जिससे उसका,
नया रूप झलकाता है ॥

[८]

तेरह वर्ष व्यतीत हो चुके
पर है मानो कल की बात!
वन को आते देख हमें जब
आर्त्त-अचेत हुए थे तात।
अब वह समय निकट ही है, जब
अवधि पूर्ण होगी वन की,
किंतु प्राप्ति होगी इस जन को,
इससे बढ़कर किस धन की?

[९]

और आर्य को! राज्यभार तो
वे प्रजार्थ ही धारेंगे,
व्यस्त रहेंगे, हम सबको भी
मानो विवश बिसारेंगे।
कर विचार लोकोपकार का
हमें न इससे होगा शोक,
पर अपना हित आप नहीं क्या
कर सकता है यह नर-लोक?

[१०]

मॅझली माँ ने क्या समझा था ?—
कि मैं राजमाता हूँगी ;
निर्वासित कर आर्य राम को
अपनी जड़ें जमा लूँगी।
चित्रकूट में किन्तु उसे ही
देख स्वयं करुणा थकती,
उसे देखते थे सब, वह थी
जिनको ही न देख सकती॥

[११]

अहो ! राज-मातृत्व यही था !
हुए भरत भी सब-त्यागी,
पर सौ-सौ सम्राटों से भी
हैं सचमुच वे बड़भागी।
एक राज्य का मूढ़ जगत ने
कितना महा-मूल्य रक्खा,
हमको तो मानो वन में ही
है विश्वानुकूल रक्खा॥

[१२]

होता यदि राजत्व-मात्र ही
लक्ष्य हमारे जीवन का,

तो क्यों अपने पूर्वज उसको
छोड़ मार्ग लेते उनका ?
परिवर्तन ही यदि उन्नति है,
तो हम बढ़ते जाते हैं,
किंतु मुझे तो सीधे सच्चे
पूर्व भाव ही भाते हैं॥

[१३]

जो हो जहाँ आर्य रहते हैं
वहीं राज्य वे करते हैं,
उनके शासन में वनचारी
सब स्वच्छन्द विहरते हैं।
रखते हैं सयत्न हम पुर में
जिन्हें पींजरों में कर बंद,
वे पशु-पक्षी भाभी से हैं
हिले-मिले स्वयमपि सानन्द॥

[१४]

करते हैं हम पतित जनों में
बहुधा पशुता का आरोप,
करता है पशुवर्ग किंतु क्या
निज निसर्ग-नियमों का लोप
मैं मनुष्यता को सुरत्व की
जननी भी कह सकता हूँ,

किंतु पतित को पशु कहना भी
कभी नहीं सह सकता हूँ ॥

[१५]

आ-आकर विचित्र पशु पक्षी,
यहाँ बिताते दोपहरी,
भाभी भोजन देतीं उनको,
ऊपर पंचवटी छाया गहरी।
चारु चपल बालक ज्यों मिलकर
माँ को घेर खिझाते हैं,
घेर-खिझाकर भी आर्या को
वे सब यहाँ रिझाते हैं ॥

[१६]

गोदावरी नदी का तट वह
ताल दे रहा है अब भी,
चंचल जल कल-कल कर मानों,
तान ले रहा है अब भी!
नाच रहे हैं अब भी पत्ते,
मन-से सुमन महकते हैं,
चंद्र और नक्षत्र ललककर,
लालच-भरे लहकते हैं ॥

[१७]

वैतालिक विहंग भाभी के
संप्रति ध्यानलग्न-से हैं,
नये गान की रचना में वे
कवि-कुल-तुल्य मग्न-से हैं।
बीच-बीच में नर्त्तकी केकी
मानो यह कह देता है—
मैं तो प्रस्तुत हूँ, देखें, कल
कौन बड़ाई लेता है?

[१८]

मुनियों का सत्संग यहाँ है,
जिन्हें हुआ है तत्त्व-ज्ञान;
सुनने को मिलते हैं उनसे
नित्य नये अनुपम आख्यान।
जितने कष्ट-कंटकों में हैं
जिनका जीवन-सुमन खिला,
गौरव-गंध उन्हें उतना ही
अत्र-तत्र-सर्वत्र मिला॥

[१९]

शुभ सिद्धान्त-वाक्य पढ़ते हैं
शुक-सारी भी आश्रम के,

मुनि-कन्यायें यश गाती हैं
क्या ही पुण्य-पराक्रम के।
अहा! आर्य के विपिन-राज्य में
सुखपूर्वक सब जीते हैं,
सिंह और मृग एक घाट पर
आकर पानी पीते हैं॥

[२०]

गुह-निषाद-शबरों तक का मन
रखते हैं प्रभु कानन में;
क्या ही सरल वचन रहते हैं
इनके भोले आनन में!
इन्हें समाज नीच कहता है,
पर हैं ये भी तो प्राणी,
इनमें भी मन और भाव हैं,
किंतु नहीं वैसी वाणी॥

[२१]

कभी विपिन में हमें व्यञ्जन का
पड़ता नहीं प्रयोजन है।
निर्मल जल, मधु, कंद, मूल, फल—
आयोजनमय भोजन है।
मनःप्रसाद चाहिये केवल,
क्या कुटीर फिर क्या प्रासाद?

भाभी का आह्लाद अतुल है,
मझली माँ का विपुल विषाद ॥

[२२]

अपने पौधों में जब भाभी
भर-भर पानी देती हैं,
खुरपी लेकर आप निराती
जब वे अपनी खेती हैं,
पाती हैं तब कितना गौरव,
कितना सुख, कितना संतोष
स्वावलम्ब की एक झलक पर
न्यौछावर कुबेर का कोष ॥

[२३]

सांसारिकता में मिलती है
यहाँ निराली निःस्पृहता,
अत्रि और अनुसूया की-सी
होगी कहाँ पुण्य-गृहता ?
मानों है यह भुवन भिन्न ही,
कृत्रिमता का काम नहीं;
प्रकृति अधिष्ठात्री है इसकी,
कहीं विकृति का नाम नहीं ।

[२४]

स्वजनों की चिंता है हमको,
होगा उन्हें हमारा सोच,
यही एक इस विपिन-वास में
दोनों ओर रहा संकोच।
सब सह सकता है, परोक्ष ही
कभी नहीं सह सकता प्रेम।
बस, प्रत्यक्ष-भाव में उसका
रक्षित-सा रहता है क्षेम॥

— ० —

माखनलाल चतुर्वेदी

२—माखनलाल चतुर्वेदी

पं० माखनलाल जी चतुर्वेदी हिन्दी के राष्ट्रीय कवि हैं। राष्ट्र की सेवा में ही उन्होंने अपना जीवन अर्पित कर दिया है। उनके हृदय में भारतीयता ने एक अक्षय स्थान बना लिया है। उनके स्वदेश-प्रेम में वही उन्माद है जो मध्ययुग के सन्त कवियों के भगवत्-प्रेम में विद्यमान था। देश में ही उन्होंने अपने आराध्यदेव का दर्शन किया है और देश-सेवा को ही अपनी सच्ची आराधना का साधन माना है। उन्होंने अपना उपनाम 'एक भारतीय आत्मा' रखा है। यह उपनाम उनके लिए बिल्कुल सार्थक है।

चतुर्वेदी जी की भाषा अपने ढंग की निराली है। उन्होंने संस्कृत के तत्सम शब्दों के साथ फारसी, उर्दू तथा प्रान्तीय ठेठ शब्दों का समिश्रण ऐसी कुशलता से किया गया है कि उनकी भाषा में सजीवता आ गई है। उनकी रचनाओं में भावों की गम्भीरता है, पर यह गम्भीरता वैसी नहीं जैसी 'प्रसाद' जी की रचनाओं में पायी जाती है। 'प्रसाद' जी की गम्भीरता का कारण उनकी दार्शनिकता है और चतुर्वेदी जी की गंभीरता का कारण है उनकी भाव-प्रवणता। वे अपने देश के पागल प्रेमी हैं। उनके उद्गारों में प्रेम का ही प्रलाप है। उस प्रेम पर उन्होंने सर्वस्व का बलिदान कर दिया है, इसी से उनमें वही निर्भीकता, दृढ़ता और निष्ठा आ गई है, जो प्राचीन साधक कवियों में पायी जाती है।

चतुर्वेदी जी मध्यप्रान्त के सर्वश्रेष्ठ कवि और विचारक हैं। वे अपनी सम्पादन-कला के लिये भी विख्यात है। खंडवा से प्रकाशित राष्ट्रीय साप्ताहिक 'कर्मवीर' हिन्दी-पत्र-जगत में अपना एक विशिष्ट स्थान रखता है। उन्होंने 'कृष्णार्जुन युद्ध' नामक नाटक भी लिखा है, जो हिन्दी-साहित्य में अपूर्व माना जाता है।

प्रसिद्ध ग्रन्थ :—

१—कृष्णार्जुन युद्ध (नाटक) २—हिमकिरीटिनी (कवितासंग्रह)
३—त्रिधारा ४—हिमतरंगिनी (कविता संग्रह)
५—साहित्य-देवता (निबन्ध संग्रह)

—:o:—

कैदी और कोकिला

क्या गाती हो, क्यूँ रह रह जाती हो—कोकिल, बोलो तो ?
क्या लाती हो ? सन्देशा किसका है—कोकिल, बोलो तो ?

ऊँची काली दीवारों के घेरे में,
डाकू, चोरों, बटमारों के डेरे में,
जीने को देते नहीं पेट-भर खाना,
मरने भी देते नहीं—तड़प रह जाना.

जीवन पर अब दिन-रात कड़ा पहरा है,
शासन है, या तम का प्रभाव गहरा है,
हिमकर निराश कर गयी रात भी काली;
इस समय कालिमामयी जगी क्यूँ आली ?

क्यूँ हूक पड़ी ? वेदना—बोझवाली सी—कोकिल; बोलो तो ?
क्या लुटा ? मृदुल वैभव की रखवाली सी—कोकिल, बोलो तो ?

बन्दी सोते हैं है घरघर श्वासों का,
दिन के दुख का रोना है निश्वासों का,
अथवा स्वर है—लोहे के दरवाजों का,
बूटों का या सन्त्री की आवाजों का,
या गिनने वाले करते हा-हा-कार,
गिनती करते हैं—एक, दो, तीन चार !

मेरे आँसू की भरी उभय जब प्याली,
बेसुरा! मधुर क्यों गाने आई आली?
क्या हुई बावली, अर्द्धरात्रि को चीखी—कोकिल, बोलो तो?
किस दावानल की ज्वालाएँ हैं दीखीं—कोकिल, बोलो तो?
निज मधुराई को कारागृह पर छाने,
जी के घावों पर तरलामृत बरसाने,
या वायु-विटप-वल्लरी चीर हठ ठाने—
दीवार चीरकर अपना स्वर अजमाने,
या लेने आई इन आँखों का पानी,
नभ के ये दीप बुझाने की है ठानी!
खा अन्धकार करते वे जग-रखवाली,
क्या उनकी शोभा तुझे न भाई आली?
तुम रवि-किरणों से खेल जगत को रोज जगाने वाली—
कोकिल, बोलो तो?
क्यों अर्द्धरात्रि में विश्व जगाने आई हो मतवाली—
कोकिल, बोलो तो?
दूवों के आँसू धोती, रवि-किरणों पर,
मोती बिखराते विंध्या के झरनों पर,
ऊँचे उठने के व्रतधारी इस वन पर,
ब्रह्माण्ड कँपाते उस उद्दण्ड पवन पर,
तेरे मीठे गीतों का पूरा लेखा,
मैं ने प्रकाश में लिखा सजीला देखा,

तब सर्वनाश करती क्यों हो? तुम जाने, या बे-जाने—
कोकिल बोलो तो?
क्यों तमोपत्र पर विवश हुई लिखने मधुरीली तानें—
कोकिल, बोलो तो?

क्या? देख न सकती जंजीरों का गहना?
हथकड़ियाँ क्यों? यह बृटिश-राज का गहना!
कोल्हू का चर्रक चूँ?—जीवन की तान।
गिट्टी पर? लिखे अँगुलियों ने क्या गान!

हूँ मोट खींचता लगा पेट पर जूआ,
खाली करता हूँ ब्रिटिश अकड़ का कूँआ।

दिन में करुणा क्यों जगे, रुलाने वाली,
इसलिये रात में गजब ढा रही आली?

इस शान्त समय मे अन्धकार को भेद रो रही क्यों हो—
कोकिल, बोलो तो?
चुपचाप, मधुर विद्रोह-बीज इस भाँति बो रही क्यों हो—
कोकिल, बोलो तो?

काली तू रजनी भी काली,
शासन की करनी. भी काली,
काली लहर; कल्पना काली,
मेरी काल-कोठरी काली,
टोपी काली, कमली काली,
मेरी लोह-शृङ्खला काली,

पहरे की हुंकृति की व्याली,
तिस पर है गाली! ऐ आली!
इस काले संकट-सागर पर—मरने की मदमाती—
कोकिल, बोलो तो!
अपने गतिवाले गीतों को गा कर हो तैराती—
कोकिल, बोलो तो?

तुझे मिली हरियाली डाली,
मुझे नसीब कोठरी काली,
तेरा नभ भर में सञ्चार,
मेरा दस फुट का संसार।
तेरे गीत कहावें वाह,
रोना भी है मुझे गुनाह!
देख विषमता तेरी मेरी;
बजा रही तिस पर रणभेरी!

इस हुंकृति पर, अपनी कृति से, और कहो क्या कर दूं?—
कोकिल, बोलो तो?
मोहन के व्रत पर, प्राणों का आसव किस में भर दूं—
कोकिल, बोलो तो?

फिर कुहू—अरे क्या बन्द न होगा गाना,
इस अन्धकार में मधुराई दफनाना!
नभ सीख चुका है कमजोरों को खाना,
क्यों बना रही अपने को उसका दाना?

फिर भी, करुणा-गाहक बन्दी सोते हैं,
स्वप्नों में स्मृतियों की श्वासों धोते हैं।
इन लोह-सीकचों की कठोर पाशों में;
क्या भर देगी ? बोलो निद्रित लाशों में,
क्या घुस जायेगा रुदन तुम्हारा निश्वासों के द्वारा—
कोकिल, बोलो तो ?
और सवेरे हो जायेगा उलट-पुलट जग सारा—
कोकिल, बोलो तो ?

—:o:—
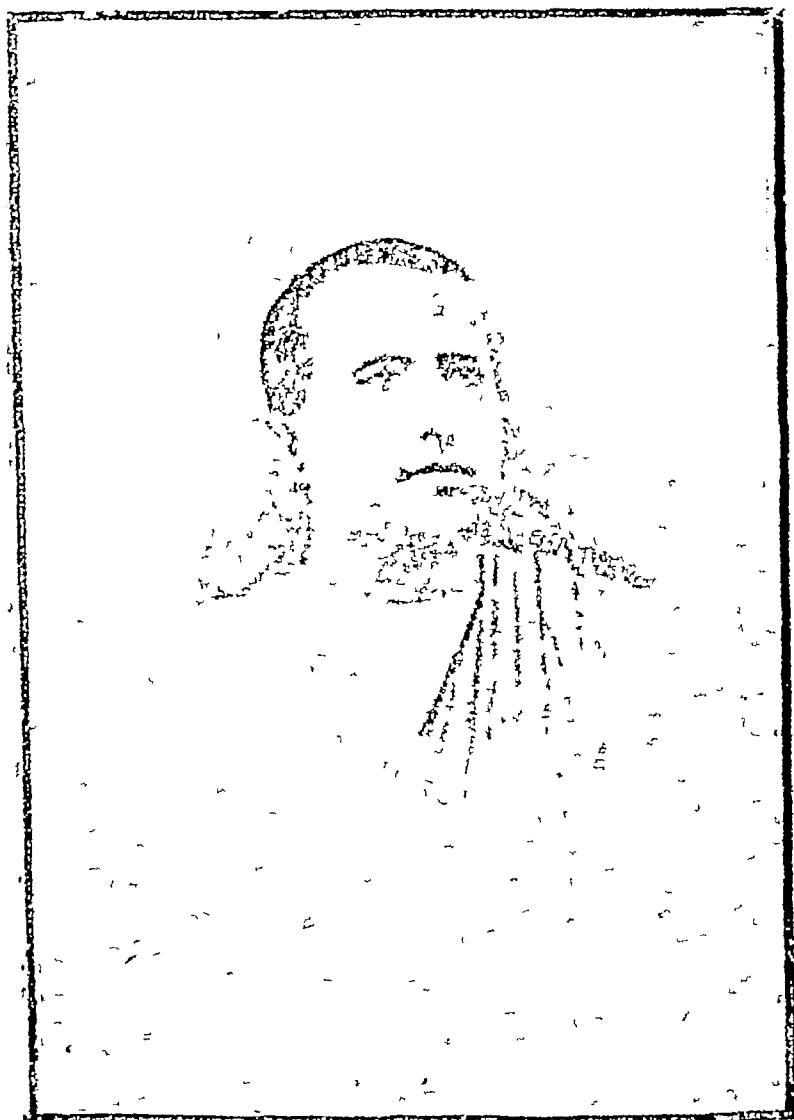
जयशंकर 'प्रसाद'

३—जयशंकर 'प्रसाद'

जन्म संवत्—१६४६] [मृत्यु-सवत्—१६६४

जयशकर 'प्रसाद' का जन्म-स्थान काशी है। उन्होंने हिन्दी, सस्कृत, अँग्रेजी और फारसी की शिक्षा घर मे ही प्राप्त की। पिता तथा अग्रज की मृत्यु हो जाने के कारण सत्रह वर्ष की अवस्था मे ही उन पर गृह का समस्त भार आ पड़ा। परन्तु गृह-कार्यों मे व्यस्त रह कर भी उनका सारा जीवन साहित्य-सेवा में ही व्यतीत हुआ। बाल्याकाल से लेकर मृत्यु-काल तक वे ग्रन्थ-प्रणयन में लगे रहे।

'प्रसाद' जी प्रतिभा-सम्पन्न कलाकार थे। उनकी शैली उन्हीं की शैली है। उनके सभी ग्रथों में एक विशेष प्रकार की मौलिकता निहित है, जिस पर 'प्रसाद' जी के व्यक्तित्व की पूरी-पूरी छाप है। लोगों ने कितने ही कवियों का अनुकरण किया है, पर 'प्रसाद' जी का अनुकरण कोई नहीं कर सका। उनकी भाषा संस्कृत मिश्रित अवश्य है, परन्तु उसमे एक विशेष ओज और आकर्षण विद्यमान है। अपने भावों की मौलिकता, शैली की नवीनता और भाषा की विशेषता के कारण वे पहले लोक-प्रिय नहीं हुए। उनकी लोक-प्रियता तब बढ़ी—जब लोगों ने उनकी कृतियों

का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया। उनके सर्वश्रेष्ठ काव्य 'कामायिनी' पर उन्हें 'मंगलाप्रसाद पारितोषिक' मिला भी तो मृत्यु के बाद।

'प्रसाद' जी की प्रतिभा अपूर्व थी। उन्होंने कविताएँ लिखीं, कहानियाँ लिखीं और नाटक तथा उपन्यास भी रचे। इन सब में उनकी अपूर्व सृजन-शक्ति विद्यमान है। वे हिन्दी के एकमात्र ऐतिहासिक नाटककार कहे जा सकते हैं। उनके नाटकों में ऐतिहासिक वातावरण बड़ी कुशलता से निर्मित किया गया है। उनके पात्र इतिहास के नर-कङ्काल नहीं हैं, अतीत युग के सजीव चरित्र हैं। उन्होंने अपनी कथाओं में समाज का यथार्थ चित्र अंकित करने का प्रयत्न नहीं किया, इसके विपरीत अपनी विशिष्ट भावना के अनुसार एक औपन्यासिक संसार की रचना कर उसमें भिन्न-भिन्न पात्रों के मानसिक जगत का अन्तर्द्वन्द दिखलाया है।

कविता के क्षेत्र में 'प्रसाद' जी नवयुग के प्रवर्तक कवि माने जाते हैं। उनके साथ ही एक नयी शैली प्रचलित हुई जिसमें कवियों ने अपनी अन्तर्भावनाओं को कल्पना के द्वारा प्रकट करने का प्रयास किया। इसी शैली का नाम छायावाद पड़ा। 'प्रसाद' जी की कविताओं में छायावाद का रूप अत्यन्त स्पष्ट है। उनमें कल्पना है, अनुभूति है तथा आत्म-चिन्तन भी है। भावों की जटिलता के कारण कितने ही स्थानों में उनकी कविताएँ दुर्बोध हो गई हैं।

प्रसिद्ध ग्रन्थ—

१—कामायिनी २—झरना

३—आँसू ४—लहर

५—आकाशदीप (कहानी-संग्रह)

६—इन्द्रजाल (कहानी-संग्रह)

७—कंकाल (उपन्यास)

८—तितली (उपन्यास)

९—चन्द्रगुप्त (नाटक)

१०—स्कन्दगुप्त (नाटक)

११—राज्य-श्री (नाटक)

१२—अजात शत्रु (नाटक)

—: ० :—

अशोक की चिंता *

जलता है यह जीवन-पतंग

जीवन कितना? अति लघु क्षण,

ये शलभ - पुञ्ज से कण-कण,

तृष्णा वह अनल-शिखा बन—

दिखलाती रक्तिम यौवन।

जलने की क्यों न उठे उमंग?

है ऊँचा आज मगध-शिर—

पदतल में विजित पड़ा गिर;

दूरागत क्रन्दन-ध्वनि फिर

क्यों गूँज रही है अस्थिर—

कर विजयी का अभिमान भंग?

इन प्यासी तलवारों से, इनकी पैनी धारों से,

निर्दयता की मारों से, उन हिंसक हुँकारों से,

नत-मस्तक आज हुआ कलिंग!

---

*कलिंग-विजय में भीषण नर-संहार देखकर सम्राट अशोक की विरक्ति।

यह सुख कैसा शासन का ?
शासन रे मानव का !
गिरि-भार बना सा तिनका,
यह घटा टोप दो दिन का—
फिर रवि-शशि-किरणों का प्रसंग।
यह महादम्भ का दानव—
पीकर अनङ्ग का आसव—
कर चुका महा भीषण रव,
सुख दे प्राणी को मानव—
तज विजय पराजय का कुढंग !
संकेत कौन दिखलाती,
मुकुटों को सहज गिराती,
जयमाला सूखी जाती,
नश्वरता गीत सुनाती,
तब नहीं थिरकते हैं सुरंग।
वैभव की यह मधुशाला,
जग पागल होने वाला,
अब गिरा-उठा मतवाला,
प्याले में फिर भी हाला,
यह क्षणिक चल रहा राग-रंग।
काली काली अलकों में,
आलस, मद-नत पलकों में,

मणि-मुक्ता की झलकों में,
सुख की प्यासी ललकों में;
देखा क्षण-भंगुर है तरंग!

फिर निर्जन उत्सव-शाला,
नीरव नूपुर श्लथ माला,
सो जाती है मधुबाला,
सूखा लुढ़का है प्याला,
बजती वीणा न वहाँ मृदंग!

इस नील विषाद गगन में—
सुख चपला सा दुख-घन में,
चिर विरह नवीन मिलन में,
इस मरु-मारीचिका-वन में—
उलझा है चंचल मन-कुरंग।

आँसू कन-कन ले छल छल—
सरिता भर रही दृगांचल,
सब अपने में हैं चंचल,
छूटे जाते सूने पल,
खाली न काल है निषंग।

वेदना विकल यह चेतन,
जड़ का पीड़ा से नर्तन,
लय-सीमा में यह कम्पन,
अभिनयमय है परिवर्तन,
चल रहा यही कब से कुढंग॥

करुण गाथा गाती है,
यह वायु वही जाती है,
ऊषा उदास आती है,
मुख पीला ले जाती है,
वन मधु पिङ्गल सन्ध्या सुरंग।
आलोक किरन है आती,
रेशमी डोर खिंच जाती,
दृग पुतली कुछ नच पाती,
फिर तम-पट में छिप जाती,
कलरव कर छिप जाते विहंग।
जब पल भर का है मिलना,
फिर चिर वियोग में झिलना,
एक ही प्रात है खिलना,
फिर सूख धूल में मिलना,
तब क्यों चटकीला सुमन-रंग?
संसृति के विक्षत पग रे;
यह चलती है डगमग रे!
अनुलेप सदृश तू लग रे!
मृदु दल बिखेर इस मग रे!
कर चुके मधुर मधुपान भृङ्ग।
भुनती वसुधा, तपते नग,
दुखिया है सारा अग-जग,

कंटक मिलते हैं प्रति पग,
जलती सिकता का यह मग,
बह जा बन करुणा की तरंग,
जलता है यह जीवन पतंग।

—:o:—

सुमित्रानन्दन पन्त

४—सुमित्रानन्दन पन्त

सुमित्रानंदन-पंत अलमोड़ा के निवासी हैं। बाल्याकाल से ही वे प्राकृतिक सौंदर्य के उपासक थे और यही कारण है कि उनकी कविता में यत्र-तत्र प्रकृति का मनोहर वर्णन मिलता है। पंत जी ने पग-पग पर प्राचीन छंदों का आश्रय नहीं लिया बल्कि उन्होंने नये-नये छंदों की रचना की; नयी-नयी उपमाएँ हमारे सामने रखीं और इस प्रकार कल्पना जगत् की पुरानी परिपाटी से पृथक् एक नये मार्ग का अनुसंधान किया। उनकी कविता मे मधुरता, सुकुमारता क्षिप्रगति का स्पष्ट दर्शन होता है। पंत जी ने रहस्यमय प्रकृति का उद्घाटन सांख्य और योग का आश्रय लेकर नहीं किया बल्कि केवल कल्पना के आधार पर उन्होंने प्रकृति के स्वरूप को सर्वसाधारण के सामने रखा। प्रकृति उनके लिये जड़ वस्तु नहीं बल्कि सुन्दरता की सजीव देवी है जो उनकी कविता को जीवन-दान देती है।

पंत जी की सबसे बड़ी विशेषता उनकी कल्पना है। वे सांसारिक जीवन के संघर्ष मे नहीं फँसे। वे तो शुद्ध प्रकृति के सौंदर्य के उपासक हैं। वे प्रकृति के कवि हैं। कल्पना उनका क्षेत्र है और सौंदर्य उनका राज्य।

प्रसिद्ध ग्रन्थ—

(१) पल्लव (२) ग्रन्थि (३) गुञ्जन
(४) युगान्त (५) युगवाणी (६) ग्राम्या
(७) ज्योत्स्ना (८) पांच कहानी (९) पल्लविनी
(१०) स्वर्ण-किरण

—:०:—

मौन निमंत्रण

(१)

स्तब्ध ज्योत्स्ना में जब संसार,
चकित रहता शिशु-सा नादान,
विश्व के पलकों पर सुकुमार,
विचरते हैं जब स्वप्न अजान;
न जाने, नक्षत्रों से कौन
निमन्त्रण देता मुझको मौन !

(२)

सघन मेघों का भीमाकाश
गरजता है जब तमसाकार,
दीर्घ भरता समीर निःश्वास,
प्रखर झरती जब पावस-धार,
न जाने, तपक तड़ित् में कौन
मुझे इंगित करता तब मौन !

(३)

देख वसुधा का यौवन-भार
गूँज उठता है जब मधुमास,

विधुर उर के-से मृदु उद्गार
कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छ्वास;
न जाने, सौरभ के मिस कौन
सँदेशा मुझे भेजता मौन !

[४]

क्षुब्ध जल-शिखरों को जब वात
सिंधु में मथकर फेनाकार,
बुलबुलों का व्याकुल संसार
बना, बिथुरा देती अज्ञात;
उठा तब लहरों से कर कौन
न जाने, मुझे बुलाता मौन !

(५)

स्वर्ण-सुख-श्री, सौरभ में भोर
विश्व को देती है जब बोर
विहग-कुल की कल-कण्ठ-हिलोर
मिला देती भू-नभ के छोर,
न जाने, अलस पलक दल कौन
खोल देता तब मेरे मौन !

(६)

तुमुल तम में जब एकाकार
ऊँघता एक साथ संसार,

भीरु झींगुर कुल की झनकार
कँपा देती तन्द्रा के तार,
न जाने, खद्योतों से कौन
मुझे तब पथ दिखलाता कौन !

(७)

कनक-छाया में, जब कि सकाल
खोलती कलिका उर के द्वार,
सुरभि-पीड़ित मधुपों के बाल
तड़प बन जाते हैं गुञ्जार,
न जाने, ढुलक ओस में कौन
खींच लेता मेरे दृग मौन !

(८)

बिछा कार्यों का गुरुतर भार
दिवस को दे सुवर्ण अवसान;
शून्य शय्या में, श्रमित अपार,
जुड़ाता जब मैं आकुल प्राण,
न जाने, मुझे स्वप्न में कौन
फिराता छाया-जग में मौन !

(९)

न जाने कौन, अये द्युतिमान
जान मुझको अबोध, अज्ञान,

सुझाते हो तुम पथ अनजान,
फूँक देते छिद्रों में गान,
अये सुख-दुख के सहचर मौन
नहीं-कह सकता तुम हो कौन !

—:०:—

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

५—सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' की गणना हिन्दी के नवयुग-प्रवर्तकों में है। उन्होंने छन्द-शास्त्र के बन्धनों से मुक्त नये छन्दों का निर्माण किया। उनकी कविता में नवयुग का नव सन्देश है। उन्होंने विश्वबन्धुत्व और स्वतन्त्र भावना का प्रचार किया है। 'निराला' जी पर वंग-सस्कृति का यथेष्ट प्रभाव पड़ा है। उन्होंने स्वय वग-साहित्य के कुछ ग्रन्थो का हिन्दी में अनुवाद भी किया है। पर उन्होंने कभी किसी एक कवि का अनुकरण नहीं किया।

'निराला' जी की भाषा उनके भावो के अनुकूल है। उन्होंने संस्कृत के तत्सम शब्दो का प्रयोग बहुलता से किया है, साथ ही सामाजिक शब्दों की भी प्रचुरता उनकी रचनाओं मे है—जैसे उनके भाव गूढ़ हैं वैसे ही उनकी भाषा भी दुरूह है।

'निराला' जी दार्शनिक कलाकार कहे जाते हैं। वे केवल प्रकृति में ही सौन्दर्य का दर्शन नहीं करते, अखिल विश्व मे भी एक अलौकिक छवि देखते हैं। वह सौन्दर्य उन्हें पार्थिव जगत से उठा कर भावना-जगत मे ले जाता है।

'निराला' जी ने कविता के अतिरिक्त उपन्यास और आख्यायिकाओं की रचना भी की है। उनमे भी उनकी यही विशेषता प्रकट होती है। वे

सदैव ऐहिक जगत से आध्यात्मिक जगत की ओर पाठकों को खींच ले जाते हैं; सीमाबद्ध जीवन में असीम और अनन्त जीवन की झलक दिखा देते हैं।

प्रसिद्ध ग्रन्थ—

१—परिमल २—गीतिका

३—अनामिका ४—तुलसीदास

५—अप्सरा (उपन्यास) ६—प्रबन्ध पद्म (निबन्ध संग्रह)

७—रवीन्द्र-कविता-कानन (आलोचना)

८—कुकुरमुत्ता ९—नये पत्ते

—:o:—

तुम और मैं

तुम तुङ्ग हिमालय शृङ्ग, और मै चंचलगति सुर-सरिता,
तुम विमल हृदय-उच्छ्वास, और मै कान्त कामिनी-कविता,
तुम प्रेम और मै शान्ति
तुम सुरापन-घन-अन्धकार, मै हूँ मतवाली भ्रान्ति।
तुम दिनकर के खर-किरण-जाल, मै सरसिज की मुस्कान
तुम वर्षों के बीते वियोग, मै हूँ पिछली पहचान,
तुम योग और मै सिद्ध
तुम हो रागानुग निश्छल तप, मै शुचिता सरल समृद्धि।
तुम मृदु मानस के भाव, और मै मनोरंजनी भाषा;
तुम नन्दन-वन-घन-विटप, और मै सुख-शीतल-तरु शाखा।
तुम प्राण—और मैं काया
तुम शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म, मै मनोमोहिनी माया।
तुम प्रेममयी के कंठहार, मै वेणी काल-नागिनी।
तुम कर-पल्लव झंकृति-सितार, मैं व्याकुल विरह-रागिनी।
तुम पथ हो, मैं हूँ रेणु
तुम हो राधा के मनमोहन, मैं उन अधरो की वेणु।
तुम पथिक दूर के श्रान्त, और मै बाट जोहती आशा,
तुम भवसागर दुस्तर, पार जाने की मैं अभिलाषा;
तुम नभ हो, मै नीलिमा
तुम शरत-काल के बाल-इन्दु, मै हूँ निशीथ-मधुरिमा,

तुम गन्ध-कुसुम कोमल पराग, मैं मृदुगति मलय समीर,
तुम स्वेच्छाचारी मुक्त पुरुष, मैं प्रकृति-प्रेम-जञ्जीर,
तुम शिव हो, मैं हूँ शक्ति
तुम रघुकुल-गौरव रामचन्द्र, मैं सीता अचला भक्ति।
तुम आशा के मधुमास, और मैं पिक कल कूजन-तान,
तुम मदन पंचशर हस्त, और मैं हूँ मुग्धा अनजान,
तुम अम्बर, मैं दिग्वसना
तुम चित्रकार घन-पटल श्याम, मैं तड़ित्-तूलिका रचना।
तुम रण ताण्डव उन्माद नृत्य, मैं मुखर मधुर नूपुर-ध्वनि,
तुम नाद वेद ओंकार सार, मैं कवि शृङ्गार शिरोमणि,
तुम यश हो, मैं हूँ प्राप्ति
तुम कुन्दइन्दु अरविंद शुभ्र, तो मैं हूँ निर्मल व्याप्ति।

६—बल्देवप्रसाद मिश्र

मिश्र जी हिन्दी-साहित्य के सुप्रसिद्ध कवि और विद्वान हैं। दर्शन-शास्त्र उनका सबसे अधिक प्रिय विषय है। काव्य और दर्शन का सुन्दर सामञ्जस्य मिश्र जी की रचनाओं में मिलता है। 'तुलसी-दर्शन नामक विद्वतापूर्ण ग्रन्थ पर नागपुर विश्वविद्यालय ने मिश्र जी को डी० लिट्० की उपाधि से विभूषित किया है।

'कोशल किशोर' और 'साकेत-सन्त' मिश्र जी के प्रसिद्ध काव्य-ग्रन्थ हैं। भाषा, वर्णन-शैली और कवित्त्व की दृष्टि से ये दोनों ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध हुए हैं। 'जीवन-संगीत' में मिश्र जी का जीवन-दर्शन कविता का परिधान पहिन बड़े सुन्दर रूप में प्रकट हुआ है।

मिश्र जी ने जहाँ विद्वानों के लिये गूढ़ काव्य सृजन किया है, वहाँ हिन्दी के नवयुवक विद्यार्थियों के लिये भी बड़ी भावपूर्ण कवितायें लिखी हैं। 'नवयुवक' शीर्षक कविता में भावों की सरसता, भाषा का सौष्टव और ओज देखते ही बनता है।

प्रसिद्ध ग्रन्थ—

१—तुलसी-दर्शन २—साकेत-सन्त ३—कोशल-किशोर
४—जीवन-विज्ञान ५—जीवन-संगीत ६—शंकर-दिग्विजय
७—समाज-सेवक

—:०:—
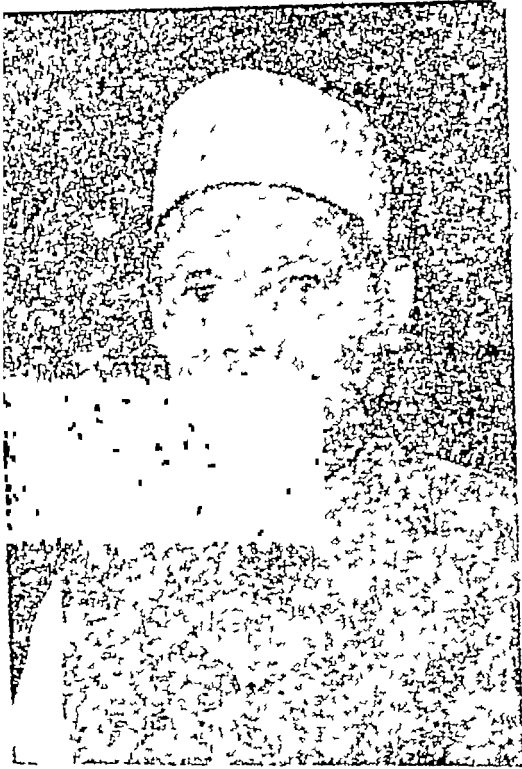
बल्देव प्रसाद मिश्र

नवयुवक

ऐ नौजवान ! सुन अमर गान, पहिचान आप अपने को तू।
ऐ महामहिम, सागर महान, बुद-बुद न जान अपने को तू ॥
जी रहे आज हैं अमर वृन्द, तेरे ही तरल इशारों पर,
इतना विशाल आकाश थमा, तेरे ही जय के नारों पर।
आशाओं के सब तार बँधे, तेरी आँखों के तारों पर,
तू कह आग में कूद पड़े, खिल जायँ फूल अँगारों पर ॥
क्यों चकित-चित्त हो भूल रहा, ऐ बल-निधान अपने को तू ?
ऐ नौजवान ! सुन अमर गान, पहिचान आप अपने को तू !
तू चाहे तो ऊसर में भी, गंगा का सागर लहराये,
तू चाहे तो सागर अथाह, पल में ऊसर-सा बन जाये,
तू चाहे रज कण पर्वत हो, भूकम्प पर्वतों पर धाये,
तू चाहे तो विदलित भू पर, अमरों का स्वर्ग उतर आये ॥
तू विभु का ही प्रतिरूप अरे, छोटा न मान अपने को तू ?
ऐ नौजवान ! सुन अमर गान, पहिचान आप अपने को तू ॥
तुझ में अतीत के सुफल सभी, तुझमें भविष्य के बीज धरे,
तेरी सत्ता से रहते हैं, उत्साह-कुञ्ज सब हरे-भरे।
तू अखिल शक्ति का धाम युवक, तेरी समता कह कौन करे ॥
तू कौन काम कर सका नहीं, तू कहाँ नहीं, क्या नहीं अरे ?
बस एक बार दिखला दे तो, हे विश्व-प्राण अपने को तू !

ऐ नौजवान ! सुन अमर गान, पहिचान आप अपने को तू !!
यह काँप उठे संसार कहीं, अँगुली यदि एक उठा दे तू,
गिर जायँ गगन के तारे भी, आँख यदि लाल दिखा दे तू।
पर्वत भी चूर-चूर होवे, अपना यदि ध्यान जमा दे तू॥
क्यों निष्क्रिय होकर खोता है, जीवन अनमोल बता दे तू?
वेदान्त तुझे कह रहा ब्रह्म, कह जग-त्राण अपने को तू!
ऐ नौजवान ! सुन अमर गान, पहिचान आप अपने को तू।
उठ सँभल, समझ अपनी ताकत, है कौन असम्भव बात तुझे,
तू सोता है, यह जगा रहा, जीवन-रण का आघात तुझे॥
दृग खोल और आ आगे बढ़, दे सका कौन है मात तुझे,
आश्चर्य अरे ओ महावीर, अपना ही बल अज्ञात तुझे॥
उठ एक बार, मत भूल, दिव्य-मंगल-निधान अपने को तू!
ऐ नौजवान ! सुन अमर गान, पहिचान आप अपने को तू॥

—:o:—

७—सुभद्राकुमारी चौहान

जन्म संवत् १९६६ — मृत्यु संवत् २००४

आधुनिक हिन्दी साहित्य में जिन महिलाओं ने देश और साहित्य की सेवा में अपना जीवन अर्पित किया है, उनमें सुभद्रा जी का प्रथम स्थान है। उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनमें जहाँ एक ओर नारी सुलभ गुणों का उत्कर्ष है, वहाँ दूसरी ओर स्वदेश प्रेम और देशाभिमान भी है। उनके भावों में कहीं भी कृत्रिमता नहीं। नारी की समस्त आकांक्षाएँ, वेदनाएँ और भावनाएँ उनकी रचनाओं में परिस्फुटित हुई हैं। उनमें नारी की लालसा, माता का स्नेह, वीर क्षत्राणी का गौरव, कुल-ललना की सहिष्णुता और गृह-लक्ष्मी की उदारता सभी का सहज रूप से चित्रण हुआ है। उनकी रचनाओं में शब्दों की छटा नहीं, अलङ्कारों का चमत्कार नहीं और भावों की जटिलता नहीं। स्वच्छ और सरल भाषा में, उन्होंने अपने उदात्त भावों को अत्यन्त स्वाभाविक ढँग से अंकित किया है। ऐसा जान पड़ता है कि कवियित्री ने किसी प्रकार का प्रयास नहीं किया। उनके हृदय के सच्चे उद्गारों ने ही मानों कविता का परिधान पहिन लिया है।

सुभद्रा जी की कविताओं का संग्रह 'मुकुल' के नाम से प्रकाशित हुआ है। उनकी कहानियों के भी तीन संग्रह 'बिखरे मोती' 'उन्मादिनी' और 'सीधे सादे चित्र' के नाम से प्रकाशित हो चुके हैं। क्या कविता और क्या कहानी, दोनों में एक सी सरलता, स्वाभाविकता और हृदय-ग्राहिता विद्यमान है। अपनी रचनाओं की लोक-प्रियता के फल स्वरूप ही वे दो

सुभद्राकुमारी चौहान

बार "सकसेरिया-पारितोषिक प्राप्त कर चुकी हैं। उनकी लोक-प्रियता का एक दूसरा प्रमाण यह है कि उन्हीं का अनुकरण कर अन्य महिलाएँ भी काव्य-रचना की ओर प्रवृत्त हुई हैं।

सुभद्रा जी संवत् २००४ की वसन्तपंचमी को परलोक सिधारीं। उनकी मृत्यु से हिन्दी को जो क्षति पहुँची है, उसकी पूर्ति निकट भविष्य में होना बड़ा कठिन है।

प्रसिद्ध ग्रन्थ—

१—मुकुल
२—बिखरे मोती
३—उन्मादिनी
४—सभा का खेल
५—त्रिधारा
६—सीधे सादे चित्र

—: ० :—

वीरों का कैसा हो वसन्त ?

वीरों का कैसा हो वसंत।

आ रही हिमांचल से पुकार,
है उदधि गरजता बार-बार,
प्राची पश्चिम भू, नभ अपार,
सब पूछ रहे हैं दिग्-दिगन्त,
वीरों का कैसा हो वसंत ?

फूली सरसों ने दिया रंग,
मधु लेकर आ पहुँचा अनंग,
वधु-वसुधा पुलकित अंग-अंग
है वीरवेष में किन्तु कंत,
वीरों का कैसा हो वसंत ?

भर रही कोकिला इधर तान,
मारू बाजे पर उधर गान,
है रंग और रण का विधान,
मिलने आये हैं आदि अंत
वीरों का कैसा हो वसंत ?

गलबाँहें हों या हो कृपाण,

चल चितवन हो या धनुष-बाण,
हो रस-विलास या दलित-त्राण,
अब यही समस्या है दुरंत,
वीरों का कैसा हो वसंत?

हल्दी घाटी के शिला-खंड,
ऐ दुर्ग! सिंहगढ़ के प्रचण्ड,
राणा ताना का कर घमण्ड,
दो जगा आज स्मृतियाँ ज्वलंत,
वीरों का कैसा हो वसन्त?

भूषण अथवा कवि चन्द नहीं,
बिजली भर दे वह छन्द नहीं,
है कलम बँधी, स्वछंद नहीं,
फिर हमें बतावे कौन! हन्त,
वीरों का कैसा हो वसन्त?

—:०:—
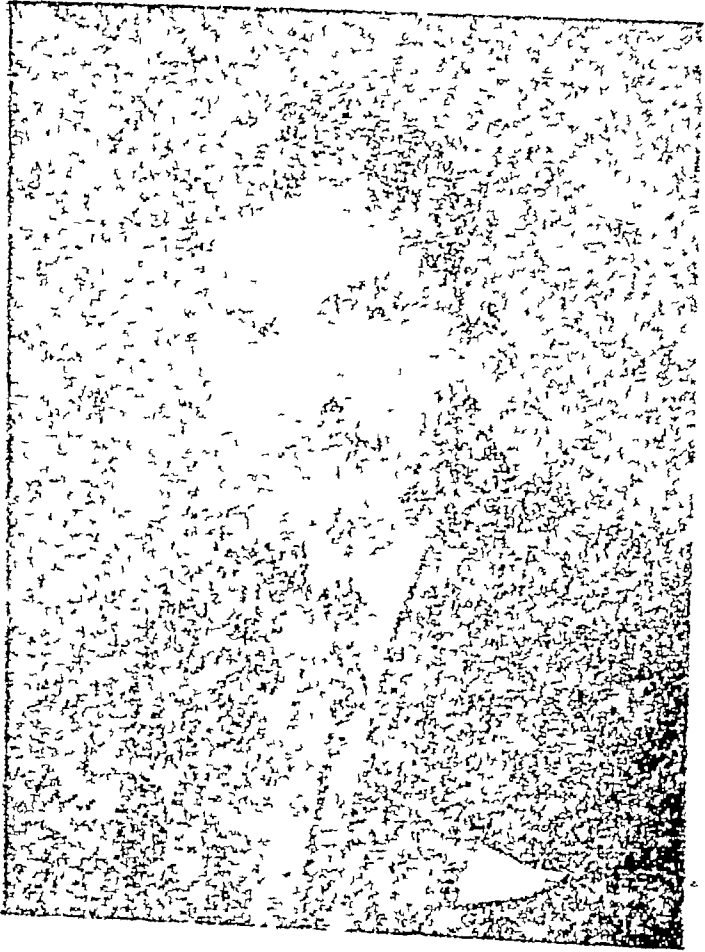
रामकुमार वर्मा

८—रामकुमार वर्मा

रामकुमार जी वर्मा मध्यप्रान्त के कवि-रत्न हैं। उन्होंने साहित्य का विस्तृत अध्ययन किया है और अभी तक अध्ययन और अध्यापन के कार्य में ही लगे हैं। अपने अध्ययन के फलस्वरूप उन्हें नागपुर विश्व-विद्यालय से डाक्टरेट मिली है। उनका शैशव-काल बुंदेलखण्ड में व्यतीत हुआ था; इसीलिये उनकी कविता में प्रकृति का मनोहर चित्रण हुआ है। यही नहीं, उनमें प्रकृति सजीव हो उठी है।

वर्मा जी की गणना नवीन-धारा के श्रेष्ठ कवियों में की जाती है। नवीन-धारा के कवि वस्तु-जगत को छोड़, भाव-जगत की ओर अग्रसर होते हैं। उनकी कविताओं में प्राकृतिक सौन्दर्य का चित्रण रहने पर भी एक अतीन्द्रिय जगत का सकेत निहित रहता है। वह सकेत अस्पष्ट रहने पर भी उनके लिये अधिक यथार्थ होता है। ऐसी कविताओं में हम जो भावों की अस्पष्टता पाते हैं, उसका कारण यही आध्यात्मिक सकेत है।

वर्मा जी में उच्चकोटि की कल्पना है और साथ ही अनुभूति भी। कल्पना और अनुभूति के उचित मेल के कारण उनकी कविता में एक विशेष आकर्षण होता है, जो उन्हें नवीन-धारा के कवियो से सर्वथा पृथक् कर देता है। इसी अनुभूति में ही उनकी यथार्थ मौलिकता है। संसार उनके लिये एक मायामय रंगभूमि नहीं है। वे जगत को यथार्थता पर

पूर्ण विश्वास रखते हैं और उसके सुख दुःख की लीलाओं में अनन्त का आभास पाकर अपूर्व आनन्द-लाभ करते हैं। उनमें महादेवी वर्मा का दुःखवाद नहीं है। उनकी कविताओं में आशा का उज्ज्वल प्रकाश और उत्साह की दीप्ति है।

उनकी भाषा परिमार्जित और शुद्ध है। उन्होंने साधारण प्रचलित शब्दों का प्रयोग भी अपनी कविताओं में ऐसी कुशलता से किया है कि वे शब्द अपने आप कवित्वपूर्ण हो गए हैं।

वर्मा जी कवि हैं, एकाङ्की-नाटककार हैं और समालोचक भी। उन्हें अपने काव्य ग्रन्थ 'चित्ररेखा' पर 'देव-पुरस्कार', 'चन्द्रकिरण' पर 'चक्रधर पुरस्कार' और 'सप्तकिरण' पर रत्नकुमारी-पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं।

प्रसिद्ध ग्रन्थ—

१—अञ्जलि २—रूप-राशि

३—चित्ररेखा ४—चन्द्रकिरण

५—हिन्दी-साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास

६—कबीर का रहस्यवाद ७—साहित्य-समालोचना

८—पृथ्वीराज की आँखें (एकाङ्की नाटकों का संग्रह)

९—चारु मित्रा ,,

१०—सप्त किरण ,,

—:०:—

किरण कण

एक दीपक-किरण-कण हूँ।

धूम्र जिसके क्रोड़ में है, उस अनल का हाथ हूँ मैं ;
नव प्रभा लेकर चला हूँ, पर जलन के साथ हूँ मै,
सिद्धि पाकर भी तुम्हारी साधना का ज्वलित क्षण हूँ।

एक दीपक किरण-कण हूँ।

व्योम के उर में अपार भरा हुआ है जो अँधेरा ;
और जिसने विश्व को दो बार क्या सौ बार घेरा ;
उस तिमिर का नाश करने के लिए मैं अखिल प्रण हूँ।

एक दीपक-किरण-कण हूँ।

शलभ को अमरत्व देकर प्रेम पर मरना सिखाया ;
सूर्य का सन्देश लेकर रात्रि के उर में समाया ;
पर तुम्हारा स्नेह खोकर भी तुम्हारी ही शरण हूँ।

एक दीपक-किरण-कण हूँ।

—:o:—

तुम्हारा हास

यह तुम्हारा हास आया।
इन फटे से बादलों में कौन-सा मधुमास आया॥
आँख से नीरव व्यथा के,
दो बड़े आँसू बहे हैं,
सिसकियों में वेदना के,
व्यूह से कैसे रहे हैं!
एक उज्वल तीर-सा रवि-रश्मि का उल्लास लाया॥
आह, वह कोकिल न जाने,
क्यों हृदय को चीर रोई।
एक प्रतिध्वनि-सी हृदय में,
क्षीण हो हो हाय सोई।
किन्तु इससे आज मैं कितने तुम्हारे पास आया?
यह तुम्हारा हास आया॥

—:०:—

भगवतीचरण वर्मा

९—भगवतीचरण वर्मा

श्री भगवतीचरण वर्मा ने जीवन की सुख-दुख पूर्ण दोनों प्रकार की अनुभूतियों का अपनी कविताओं में सजीव चित्रण किया है। उन्होंने अपनी कविताओं में जीवन का सत्य हृदय खोल कर रख दिया है। जीवन की क्रूरता के चित्रण में भी उन्होंने आकर्षण स्थापित किया है। यह कार्य एक सफल कलाकार ही कर सकता है। वर्मा जी प्रेम, संघर्ष, युग की पुकार और जीवन-दर्शन का सुन्दर निरूपण करने में सफल हैं। उनकी भाषा में सहज प्रवाह है। उनकी भाषा सच्चे अर्थों में उनके भावों की अनुगामिनी है। वर्मा जी हिन्दी के एक मँजे हुए कथाकार भी हैं।

प्रसिद्ध ग्रन्थ—

१—मधुकरण	२—प्रेम-संगीत
३—मानव	४—चित्ररेखा
५—टेढ़े मेढ़े रास्ते	६—स्टालमेंट

भैंसागाड़ी

[१]

चरमर-चरमर -चूँ-चरर-मरर,
जा रही चली भैंसागाड़ी !

गति के पागलपन से प्रेरित चलती रहती संसृति महान,
सागर पर चलते हैं जहाज अम्बर पर चलते वायुयान,
भूतल के कोने-कोने में रेलों-ट्रामों का जाल बिछा,
हैं दौड़ रही मोटरें-बसें लेकर मानव का वृहत ज्ञान !

पर इस प्रदेश में जहाँ नहीं उच्छ्वास, भावनाएँ चाहें,
वे भूखें, अधखाये किसान, भर रहे जहाँ सूनी आहें,
नंगे बच्चे चिथड़े पहिने माताएँ जर्जर डोल रही,
हैं जहाँ विवशता नृत्य कर रही धूल उड़ती हैं राहें,

बीते युग की परछाहीं-सी बीते युग का इतिहास लिये,
'कल' के उन तन्द्रिल सपनों में 'अब' का निर्दय उपहास लिये,
गति में किन सदियों की जड़ता ? मन में किस स्थिरता की ममता ?
अपनी जर्जर-सी छाती में अपना जर्जर विश्वास लिये,
भर-भर कर फिर मिटने का स्वर कँप-कँप उड़ते जिसके स्तर-स्तर
हिलती-डुलती, हँपती-कँपती, कुछ रुक-रुक कर, कुछ सिहर-सिहर
चरमर-चरमर-चूँ-चरर-मरर जा रही चली भैंसागाड़ी

[२]

उस ओर क्षितिज के कुछ आगे, कुछ पाँच कोस की दूरी पर,
भू की छाती पर फोड़ों-से हैं उठे हुए कुछ कच्चे घर।
मैं कहता हूँ खँडहर उसको पर, वे कहते हैं उसे ग्राम,
जिसमें भर देती निज धुँधलापन असफलता की सुबह-शाम,
पशु बन कर नर पिस रहे जहाँ नारियाँ जन रही हैं गुलाम।
पैदा होना, फिर मर जाना, बस यह लोगों का एक काम,
था वहीं कटा दो दिन पहले गेहूँ का छोटा एक खेत!

तुम सुख-सुषमा के लाल तुम्हारा है विशाल वैभव विवेक,
तुमने देखी है मान भरी उच्छृङ्खल सुन्दरियाँ अनेक,
तुम भरे-पुरे, तुम हृष्ट-पुष्ट ऐ तुम समर्थ कर्त्ता-हर्ता,
तुमने देखा है क्या बोलो हिलता डुलता कंकाल एक?

वह था उसका ही खेत, जिसे उसने उन पिछले चार माह,
अपने शोणित को सुखा-सुखा, भर-भर कर अपनी विवश आह,
तैयार किया था, औ' घर में थी रही रुग्ण पत्नी कराह!
उसके वे बच्चे तीन, जिन्हें माँ-बाप का मिला प्यार न था,
जो थे जीवन के व्यंग, किन्तु मरने का भी अधिकार न था,

थे क्षुधा-ग्रस्त बिल-बिला रहे मानों वे मोरी के कीड़े,
वे निपट घिनौने, महा पतित बौने कुरूप टेढ़े मेढ़े!
उसका कुटुम्ब था भरा-पुरा आहों से हाहाकारों से!
फाकों से लड़लड़ कर प्रतिदिन घुट-घुट कर अत्याचारों से,
तैयार किया था उसने ही अपना छोटा-सा एक खेत!

बीबी-बच्चों से छीन, बीन दाना-दाना, अपने में भर,
भूखे तड़पें या मरें, भरों का तो भरना है उसको घर!
धन की दानवता से पीड़ित कुछ फटा हुआ, कुछ कर्कश स्वर,
चरमर-चरमर-चूँ-चरर-मरर जा रही चली भैसागाड़ी!

[३]

है बीस कोस पर एक नगर, उस एक नगर में एक हाट,
जिसमें मानव की दानवता फैलाये है निज राज-पाट,
साहूकारों का भेष धरे हैं जहाँ चोर औ' गिरहकाट;
है अभिशापों से घिरा जहाँ पशुता का कलुषित ठाट-बाट!
उसमें चाँदी के टुकड़ों के बदले में लुटता है अनाज,
उन चाँदी के ही टुकड़ों से तो चलता है सब राज-काज!
वह राज-काज, जो सधा हुआ है उन भूखे कंकालों पर,
इन साम्राज्यों की नींव पड़ी है तिल-तिल मिटने वालों पर!
वे व्योपारी वे जमींदार वे हैं लक्ष्मी के परम भक्त,
वे निपट निरामिष सूदखोर, पीते, मनुष्य का ऊष्ण रक्त!
इस राज-काज के वही स्तम्भ, उनकी पृथ्वी, उनका ही धन,
ये ऐश और आराम उन्हीं के, और उन्हीं के स्वर्ग-सदन!
उस बड़े नगर का राग-रंग हँस रहा निरन्तर पागल-सा,
उस पागलपन से ही पीड़ित कर रहे ग्राम अविकल क्रन्दन!
चाँदी के टुकड़ों में विलास चाँदी के टुकड़ों में है बल,
इन चाँदी के ही टुकड़ों में सब धर्म-कर्म सब चहल-पहल!
इन चाँदी के ही टुकड़ों में है मानव का अस्तित्व विफल!

चाँदी के टुकड़ों को लेने प्रतिदिन पिसकर, भूखों मर कर,
भैंसागाड़ी पर लदा हुआ जा रहा चला मानव जर्जर,
है उसे चुकाना सूद, कर्ज है उसे चुकाना अपना कर,
जितना खाली है उसका घर उतना खाली उसका अन्तर।

नीचे जलने वाली पृथ्वी ऊपर जलने वाला अम्बर;
औ' कठिन भूख की जलन लिये नर बैठा है बन कर पत्थर!
पीछे है पशुता का खँडहर दानवता का सामने नगर,
मानव का कृश कंकाल लिये चरमर-चरमर-चू-चरर-मरर,
जा रही चली भैंसा गाड़ी!

—:※:—
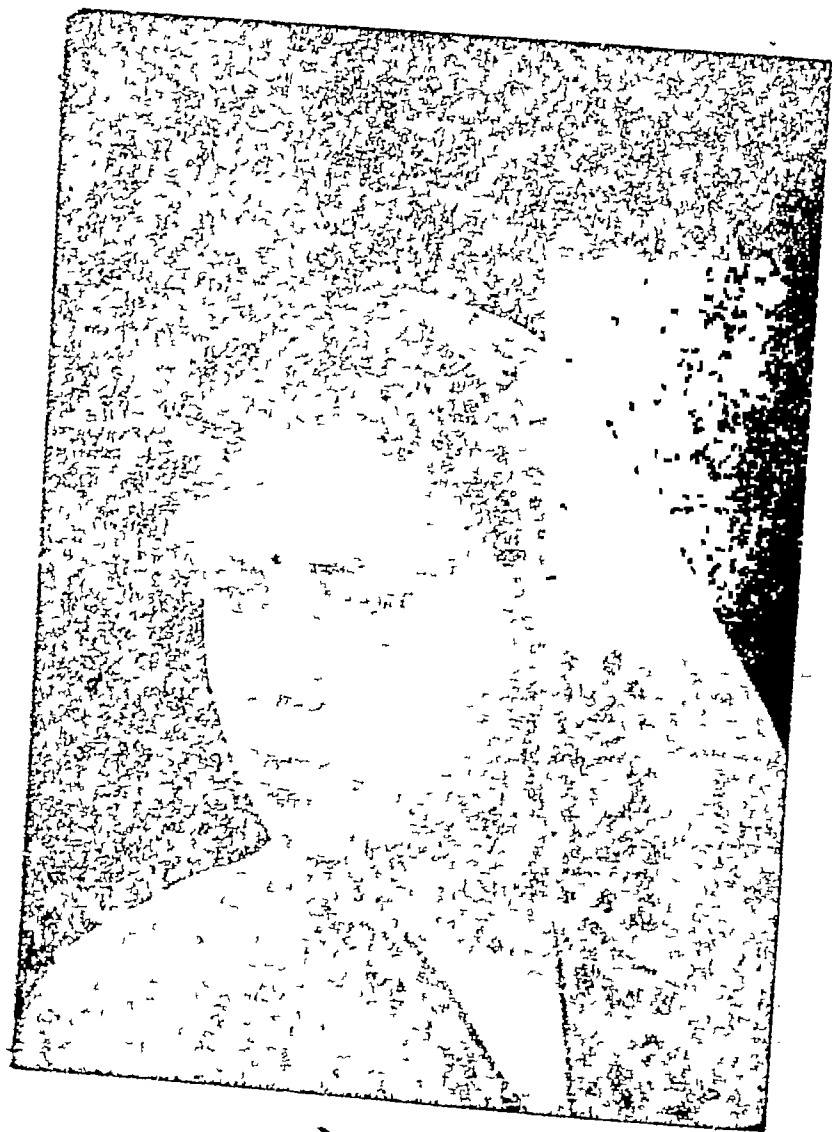
महादेवी वर्मा

१०—महादेवी वर्मा

महादेवी वर्मा ने अपनी कविताओं के द्वारा हिन्दी साहित्य में अच्छी ख्याति प्राप्त की है। कितने ही समालोचकों की राय है कि वे आधुनिक युग की मीरा हैं; उनमें वही वेदना, वही वियोग-व्यथा और वही विह्वलता है। उनकी रचनाओं में सर्वत्र करुण रस का संचार हुआ है। उन्हें सुख की आकांक्षा ही नहीं है—उन्हें तो वियोग-जन्य व्यथा में ही सन्तोष है। उनकी इस अनुभूति ने उनकी कविताओं को बहुत सरस बना दिया है और यही उनकी लोक प्रियता का सबसे बड़ा कारण है। उनकी भाषा में संस्कृत शब्दों की प्रचुरता रहने पर भी कोमलता और मधुरता है।

सुभद्राकुमारी जी ने नारी-जीवन में ही सौंदर्य की पराकाष्ठा देखी है—वे किसी अपार्थिव जगत के लिये इच्छुक नहीं है। उनका सारा सुख, सारा आनन्द गृह जीवन में ही बद्ध है। पर महादेवी वर्मा ने नारी-जीवन में कहीं भी तृप्ति या सन्तोष का अनुभव नहीं किया। उन्होंने जीवन में सर्वत्र एक विषाद की छाया ही देखी है। मातृत्व की भावना या देश-सेवा की आकांक्षा ने उस विषाद के निबिड़ छाया-लोक में प्रवेश ही नहीं किया; इसीलिये उन्होंने अपनी कल्पना के द्वारा एक अनन्त मायालोक की सृष्टि की है; जहाँ मृत्यु ही जीवन है, चिर-वियोग ही चिरसुख है और

जहाँ पीड़ा का अखण्ड राज्य है। ऐहिक जगत से उनका कोई सम्बन्ध नहीं। ऐहिक सुखों की उन्हें कामना नहीं, वे तो आध्यात्मिक जगत की निवासिनी हैं; इसी से उनकी कविताओं में रहस्यवाद का उन्मेष है।

महादेवी जी को 'सकसेरिया और मंगलाप्रसाद' पारितोषिक मिल चुका है। वे कविता के साथ ही साथ गद्य भी बहुत सुन्दर लिखती हैं। अतीत के चलचित्र, और 'शृङ्खला की कड़ियाँ' हिन्दी में अपने ढंग की पुस्तकें हैं।

प्रसिद्ध ग्रन्थ—

१—नीहार
२—रश्मि
३—नीरजा
४—सान्ध्यगीत
५—यामा
६—अतीत के चलचित्र
७—शृङ्खला की कड़ियाँ।

—:०:—

वंग-वन्दना

वंग-भू शत वन्दना ले।

भव्य भारत की अमर कविता हमारी वन्दना ले।

अंक में झेला कठिन अभिशाप का अंगार पहला,

ज्वाल के अभिषेक से तूने किया शृङ्गार पहला,

तिमिर-सागर हरहराता, संतरण कर ध्वंस आता,

तू मनाती है हलाहल घूँट में त्योहार पहला,

नीलकण्ठिनि! सिहरता जग स्नेहकोमल कल्पना ले।

वेणु वन में भटकता है एक हाहाकार का स्वर,

आज छाले से जले जो भाव से थे सुभर पोखर,

छन्द से लघु ग्राम तेरे, खेल लय-विश्राम तेरे,

वह चला इन पर अचानक नाश का निस्तब्ध सागर

जो अचल बेला बने तू आज वह गति-साधना ले!

शक्ति की निधि अश्रु के क्या श्वास तेरे तोलते हैं?

आह तेरे स्वप्न क्या कंकाल बन-बन डोलते हैं

अस्थियों की ढेरियाँ हैं; जम्बुकों की फेरियाँ हैं

"मरण-केवल मरण" क्या संकल्प तेरे बोलते हैं!

भेट में तू आज अपनी शक्तियों की चेतना ले!

किरण-चर्चित, सुमन चित्रित, खचित स्वर्णिम-बालियो से,

चिरहरित पट है मलिन शत-शत चिता-धूमालियों से,

गृद्ध के पर छत्र छाते, अब उलूक विरुद सुनाते,
अर्घ्य आज कपाल देते शून्य कोटर-प्यालियों से
मृत्यु क्रन्दन गीत-गाती हिचकियों की मूर्च्छना ले!

भृकुटियों की कुटिल लिपि में सरल सृजन विधान भी दे,
जननि अमर दधीचियों की अब कुलिश का दान भी दे,
निशि सघन बरसात वाली, गगन की हर साँस काली,
शून्य धूमाकार अब अर्चियों को प्राण भी दे,
आज रुद्राणी! न लो निष्फल पराजय-वदना ले!

तुङ्ग मंदिर के कलश को धो रहा है रवि-अंशुमाली,
लीपती आँगन विभा से वह 'शरद' ऋत की उजाली।
दीप लौ का लास 'बंकिम' पूत-धूम 'विवेक' अनुपम,
रज हुई निर्माल्य छू चैतन्य की कम्पन निराली,
अमर पुत्र पुकारते तेरे, अजर आराधना ले!

बोल दे यदि आज, तेरी जय प्रलय का ज्वार बोले.
डोल जा यदि आज तो यह दम्भ का संसार डोले,
उच्छ्वसित हो प्राण तेरा इस व्यथा का हो सवेरा,
एक इंगित पर तिमिर का सूत्रधार रहस्य खोले!
नाप शत अन्तक सके यदि आज नूतन सर्जना ले।

भाल के इस रक्त-चन्दन में ज्वलित दिनमान जागे,
मन्द्र सागर तूर्य में तेरा अमर निर्माण जागे,
क्षितिज तमसाकार टूटे, प्रखर जीवन-धार, फूटे,

जाह्नवी की उर्मियाँ हों तार, भैरव राग जागे।
ओ विधात्री! जागरण के गीत की शत अर्चना ले।
ज्ञानगुरु इस देश की कविता हमारी वन्दना ले।
वंग-भू शत वन्दना ले, स्वर्ण-भू शत वदना ले!

—:०:—

हरिवंशराय 'बच्चन'

११—हरिवंशराय 'बच्चन'

बच्चन जी वर्तमान कवियों में सबसे अधिक लोकप्रिय हैं। भाषा और भाव दोनों दृष्टियों से उनकी कविता हृदय को छूने वाली है।

बच्चन जी के तथाकथित 'माधुवाद' अथवा 'हालावाद' को लेकर आलोचकों में कुछ मतमतातर चले। किन्तु वे अपनी भावनाओं को अनुभूतियों के साथ ईमानदारी के साथ प्रकट करते गये।

बच्चन जी की कविताओ में आशा, उत्साह, प्रेम, निराश, करुणा और वेदना सभी कुछ है। उनकी कवितायें बड़ी मार्मिक होती हैं। भावों को सुस्पष्टता, भाषा की सरसता और अनुभूतियों की तीव्रता उनकी अपनी विशेषता है।

प्रसिद्ध ग्रन्थ—

१—मधुशाला	२—मधुबाला
३—मधुकलश	४—निशानिमंत्रण
५—एकांत संगीत	६—आकुल अन्तर
७—बंगाल का अकाल	८—हलाहल

९—सतरंगनी

—:०:—

कवि के बंधन

(१)

मन रोक न जो मुझको रखता
जीवन से निर्झर शरमाता !

मेरी छाती के भीतर जो
जादू की साँसें चलती हैं,
उनके छूने से जग-युग की
निश्चल चट्टानें गलती हैं;

अपनी दो बातों के अंदर
मैं सरिता एक सभाले हूँ,

मेरे अधरों पर आ-आकर
लहरें दिनरात मचलती हैं,

मेरे पथ की बाधा बनकर
कोई कब तक टिक सकता था,
पर मैं खुद ऊँचे बाँध उठा
अपने को उनमें भरमाता
मन रोक न जो मुझको रखता
जीवन से निर्झर शरमाता !

(२)

रस-रूपमयी इस दुनिया पर
जब मेरी आँखें बिछ जातीं
तब किसकी भौंहें तन करके
मेरी पलकों को डरपातीं,

कलियों की कोमलता छू लूँ
मधुपों की मादकता छू लूँ,

यह कौन कहाँ से थामे है
जो नहीं उँगलियाँ बढ़ पातीं,

मधुवन का आज बुलावा है,
पावों में कौन लिपटता है,
इन मृदु पर दृढ़ जंजीरों से
किसने मेरा जोड़ा नाता ?
मन रोक न जो मुझको रखता
जीवन से निर्झर शरमाता !

(३)

जब दिल विगलित हो जाता है
तब वह कैसे जम सकता है,
धारा को मोड़ भले ही दो
पर वेग कहाँ थम सकता है,

भू पर न चला इठलाता तो
किरणों पर नीर चढ़ेगा ही,

पर नभ के सूने आँगन में
वह कितने दिन रम सकता है

यह रंग-बिरंगी जगती ही
मेरे मानस की अधिकारी,
झरना बनकर न बहा उस पर
बादल बनकर रस बरसाता !
मन रोक न जो मुझको रखता
जीवन से निर्झर शरमाता !

—:o:—
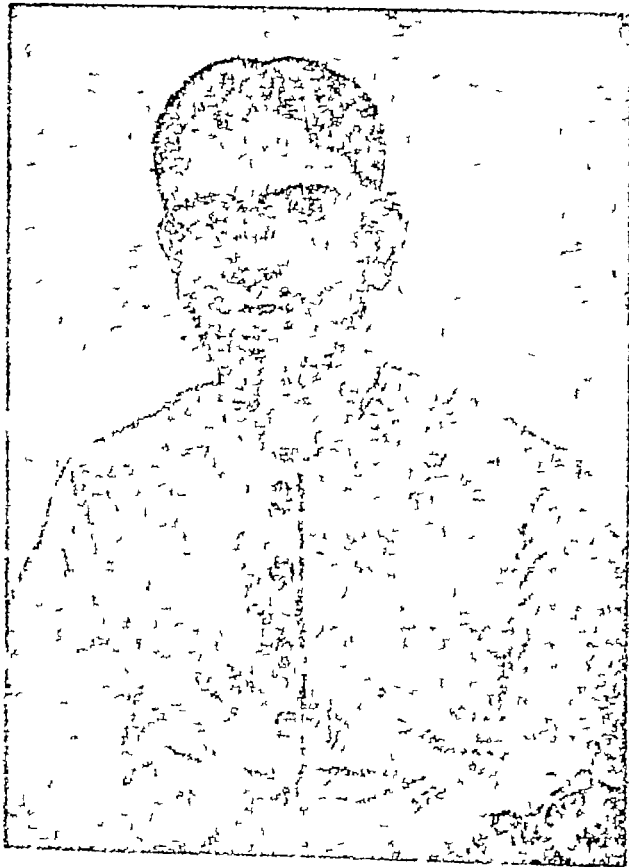
रामधारी सिंह 'दिनकर'

१२—रामधारीसिंह 'दिनकर'

'दिनकर' बिहार के सुप्रसिद्ध प्रतिभाशाली कवि हैं। प्रगतिशील नयी पीढी के कवियों मे आपका उत्कृष्ट स्थान है। राष्ट्र के अतीत के साथ अन्तर की पीड़ा का सयोग स्थापित करके, कविता मे एक अपूर्व ओज तथा करुणा का सचार करने मे आप सिद्धहस्त हैं। भारत के विगत वैभव का गान और भविष्य के स्वर्ण विहान का स्वप्न आप की कविताओं के प्रिय विषय हैं। गाँधीवाद से प्रभावित होकर, देहातो की ओर उन्मुख हो आपने काव्य-क्षेत्र मे एक नया मार्ग प्रकाशित किया है। आपकी कविता बड़ी ओज पूर्ण होती है। और उसमें श्रेष्ठ काव्य-कला की सुन्दर अभिव्यञ्जना पायी जाती है।

प्रसिद्ध ग्रन्थ

१—रेणुका २—हुँकार

३—रसवंती ४—द्वन्द्वगीत

५—सामधेनी ६— कुरुक्षेत्र

७ मिट्टी की ओर (आलोचना)

—:०:—

हिमालय

मेरे नगपति ! मेरे विशाल !
भव्य साकार दिव्य गौरव विराट !
पौरुष के पुञ्जीभूत ज्वाल !
मेरी जननी के हिम-किरीट !
मेरे भारत के दिव्य भाल !
मेरे नगपति ! मेरे विशाल

युग-युग अजेय, निर्बन्ध, मुक्त !
युग-युग गर्वोन्नत, नित महान !
निस्सीम व्योम में तान रहा,
युग से किस महिमा का वितान ?
कैसी अखंड यह चिर-समाधि ?
यतिवर ! कैसा यह अमर ध्यान ?
तू महाशून्य में खोज रहा ?
किस जटिल समस्या का निदान ?
उलझन का कैसा विषम जाल ?
मेरे नगपति ! मेरे विशाल !

ओ मौन तपस्या-लीन यती !
पल भर तो कर तू दृगोन्मेष !

रे ! ज्वालाओं से दग्ध, विकल
है तड़प रहा पद पर स्वदेश !

सुखसिन्धु, पञ्चनद, ब्रह्मपुत्र
गंगा यमुना की अमिय-धार
जिस पुण्य-भूमि की ओर बही
तेरी विगलित करुणा उदार ।
जिसके द्वारों पर खड़े क्रान्त
सीमापति ! तूने की पुकार—
पद-दलित इसे करना पीछे
पहले ले मेरा सिर उतार ।'
उस पुण्य-भूमि पर आज तपी
रे ! आन पड़ा संकट कराल,
व्याकुल तेरे सुत तड़प रहे
डँस रहे चतुर्दिक विविध व्याल ।
मेरे नगपति ! मेरे विशाल !

कितनी मणियाँ लुट गईं, मिटा
कितना मेरा वैभव अशेष !
तू ध्यान-मगन ही रहा, इधर
वीरान हुआ प्यारा स्वदेश !
कितनी द्रुपदा से बाल खुले,
कितनी कलियों का अन्त हुआ,
कह हृदय खोल चित्तौर ! यहाँ

कितने दिन ज्वाल वसन्त हुआ !'
पूछो सिकताकण से हिमपति !
तेरा वह राजस्थान कहाँ ?
वन-वन स्वतन्त्रता-दीप लिये
फिरने वाला बलवान कहाँ ?
तू पूछ अवध से, राम कहाँ ?
वृन्दा ! बोलो, घनश्याम कहाँ ?
ओ मगध ! कहाँ मेरे अशोक
वह चन्द्रगुप्त बलधाम कहाँ ?
पैरों पर ही है पड़ी हुई
मिथिला भिखारिणी सुकुमारी,
तू पूछ, कहाँ उसने खोई
अपनी अनन्त निधियाँ सारी ?
री कपिलवस्तु ! कह बुद्धदेव—
के वे मंगल उपदेश कहाँ ?
तिब्बत, इरान, जापान, चीन
तक गये हुए सन्देश कहाँ ?
वैशाली के भग्नावशेष से
पूछ लिच्छवी-शान कहाँ ?
ओ री उदास गंडकी ! बता
विद्यापति कवि के गान कहाँ ?
तू मौन त्याग कर पूछ आज,

बंगाल, नवाबी ताज कहाँ ?
भारत का अंतिम ज्योति-नयन,
मेरा प्यारा सीराज कहाँ ?
तू तरुण देश से पूछ अरे !
गूँजा कैसा यह ध्वंस-राग
अम्बुधि-अंतस्तल बीच छिपी
यह सुलग रही है कौन आग ?
प्राची के प्राङ्गण बीच देख
जल रहा स्वर्ण-युग-अग्नि-ज्वाल,
तू सिंहनाद कर जाग यती !
मेरे नगपति ! मेरे विशाल !
रे रोक युधिष्ठिर को न यहाँ
जाने दे उनको स्वर्ग धीर !
पर फिरा हमें गाण्डीव, गदा,
लौटा दे अर्जुन, भीम वीर !
कह दे शंकर से आज करें
वे प्रलय-नृत्य फिर एक बार ;
सारे भारत में गूँज उठे
'हर हर-बम' का फिर महोच्चार !
ले अँगड़ाई उठ हिले धरा
कर निज विराट स्वर में निनाद,
तू शैल-राट ! हुङ्कार भरे

फट जाय कुहा, भागे प्रमाद !
तू मौन त्याग, कर सिंहनाद
रे तपी ! आज तप का न काल,
नवयुग शंख-ध्वनि जगा रही
तू जाग, जाग, मेरे विशाल !
मेरी जननी के हिम-किरीट !
मेरे भारत के दिव्य-भाल !
नवयुग शंख-ध्वनि जगा रही,
जागो नगपति ! जागो विशाल !

परिशिष्ट

१—रस

साहित्य-शास्त्र मे रस कवित्व की आत्मा कहा गया है। छन्द उसके अवयव हैं और अलङ्कार उसके भूषण। कवित्व-कला का राज्य सौन्दर्य है। वह सौन्दर्य किसी एक स्थान मे एकत्र नहीं है। कवि सर्वत्र उसका अनुभव करता है। वाह्य जगत मे और अन्तर्जगत मे उसकी अनुभूति भिन्न-भिन्न रसों मे व्यक्त होती है। वाह्य जगत में कभी वह प्रकृति का विराट् रूप देखकर विस्मय-विमुग्ध हो जाता है और कभी उसकी सहारिणी शक्ति का अनुभव कर उस पर आतङ्क छा जाता है। कभी वह उसकी मदिरमा मे निमग्न होकर प्रेम का रसास्वादन करता है और कभी उसकी अस्थिरता का अनुभव कर वह सहानुभूति प्रकट करता है। मनुष्य के अन्तर्जगत मे भी वह सौन्दर्य की भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ देखता है। दैनिक जीवन मे प्रतिक्षण मनुष्य का जो उत्थान-पतन होता रहता है, वह कला के लिए उपेक्षणीय नहीं। आशा-निराशा, सुख-दुख, सयोग-वियोग आदि भावों के आघात-प्रत्याघात से कभी शृङ्गार रस, कभी करुण रस और कभी शान्त रस का प्रादुर्भाव होता है। हमारी अन्तरात्मा की शक्ति जब शरीर और मन के द्वारा प्रकट होती है, तब वीर और रौद्र रस की सृष्टि होती है। जब शरीर और मन को पार कर आत्म-शक्ति का स्वरूप लक्षित

होता है, तब शान्त रस की धारा बहने लगती है। मनुष्यों के हृदय में दुर्बलता है, उसको असगति दिखाने से हास्य का उद्रेक होता है, और उससे सहानुभूति करने पर मृदु-परिहास होता है। इसी प्रकार साहित्य में शृङ्गार, करुण, रौद्र आदि भिन्न-भिन्न रसों की अवतारणा होती है।

सत्काव्य को पढ़ने से हमको जो एक अलौकिक आनन्द प्राप्त होता है उसे हम रस कहते हैं। रस का आधार भाव है। जो भाव हमारे मन में अधिक काल तक रह कर उसे तन्मय बना डालते हैं, वे **स्थायी भाव** कहे जाते हैं। पर जो भाव थोड़े ही काल तक उत्पन्न होकर विलीन हो जाते हैं, **संचारी भाव** कहलाते हैं। इन भावों के अतिरिक्त रस की उत्पत्ति से लिए **विभाव** और **अनुभाव** की आवश्यकता होती है। जिनके कारण रस की उत्पत्ति होती है वे **विभाव** कहलाते हैं। विभाग दो प्रकार के हैं—**आलंबन** और **उद्दीपन**। आलम्बन का अर्थ है आश्रय। जिसके आश्रय से हमारे मन में स्थायीभाव प्रकट, होता है, वह आलम्बन कहा जाता है और जो **स्थानीयभाव** को उद्दीप्त करता है, उसे उद्दीपन कहते हैं। जब हमारे मनोभाव बाहर प्रकट होते हैं, तब शारीरिक चेष्टाओं से उनकी अभिव्यक्ति होती है। उसी अभिव्यक्ति को हम लोग **अनुभाव** कहते हैं।

रस दस माने गए हैं. १—शृङ्गार—२ हास्य ३—करुण ४—वीर ५—रौद्र ६—भयानक ७—वीभत्स ८—अद्भुत ९ शान्त १०—वात्सल्य। उनके स्थायीभाव हैं—प्रेम, हँसी, शोक, उत्साह, क्रोध, भय, घृणा, विस्मय, निर्वेद और स्नेह।

संचारीभाव ३३ माने गये हैं। ये सचारीभाव रस को बढ़ाने में सहायक होते हैं।

शृङ्गार रस मे प्रेम का वर्णन होता है। इसी प्रेम को रति कहते हैं। नायक और नायिका शृङ्गार रस के आलम्बन हैं। वसन्त ऋतु, उपवन रमणीक स्थल आदि उद्दीपन हैं। कटाक्ष, हास्य विनोद, प्रेमभरी दृष्टि, मुसकुराहट, प्रसन्नता ये सब अनुभाव है। उत्सुकता, चञ्चलता, लज्जा आदि सञ्चारी भाव हैं।

यही बात दूसरे रसो के सम्बन्ध मे भी कही जा सकती है।

रसों के उदाहरण

संयोग शृङ्गार

दोउ जन दोऊ को अनूप रूप निरखत,
पावत कहूँ न छवि-सागर को छोर हैं।
'चिन्तामनि' केलि की कलानि के बिलासनि सो,
दोऊ जन दोऊन के चित्तन के चोर हैं॥
दोऊ जने मन्द मुसुकानि-सुधा बरषत,
दोऊ जने छक मोद-महँ दुहूँ ओर हैं।
सीता जु के नैन रामचन्द्र के चकोर भये,
राम-नैन सीता-मुख-चन्द्र के चकोर हैं॥

—तुलसीदास

वियोग शृङ्गार

यह सकल दिशाएँ आज रो-सी रही हैं।
यह सदन हमारा है, हमे काट खाता।
मन उचट रहा है, चैन पाता नही है,

विजन-विपिन में है भागता-सा दिखाता।
रुदन-हित, न जाने, कौन क्यों है बुलाता,
सखि हृदय हमारा दग्ध क्यों हो रहा है?
प्रिय-विरह-घटाएँ घेरती आ रही हैं,
घहर-घहर, देखो, हैं कलेजा कँपातीं।

—अयोध्यासिंह उपाध्याय

हास्य रस

हँसि हँसि भजैं देखि दूलह दिगम्बर को,
पाहुनी जेआवैं हिमालय के उछाह में।
कहैं 'पदमाकर' सुकाहू सों करैं को कहा,
जोई जहाँ देखै सो हँसाई तहाँ राह में॥
मगन भयेई हँसै नगन महेश ठाढे,
और हँसै बड़े हँसि-हँसि कै उमाह में।
सीस पर गंग हँसै, भुजनि भुजंग हँसै,
हास ही को दंगा भयो नंगा के विवाह में॥

—पद्माकर

वीर रस

युद्धवीर

(१)

इन्द्र जिमि जंभ पर बाड़व सुअंभ पर,
रावन सदंभ पर रघुकुलराज है।

पौन बारिबाह पर, संभु रतिनाह पर,
ज्यों सहसबाहु पर राम द्विजराज हैं ॥
दावा द्रुम-दण्ड पर, कान्ह जिमि कंस पर,
भूखन वितुण्ड पर, जैसे मृगराज हैं।
तेज तम अंस पर, कान्ह जिमि कंस पर,
त्यौं मलिच्छ बंस पर सेर सिवराज हैं ॥

—भूषण

दानवीर

(२)

संपति सुमेर की कुबेर की जु पावै ताहि
तुरत लुटावत, विलंब उर धारै ना
कहैं पदमाकर, सो हेम हय हाथिन के
हलके हजारन के बितर विचारै ना ॥
गंज गज बकस महीप रघुनाथराव
पाय गज धोखे कहुँ काहु देइ डारै ना।
याही डर गिरजा गजानन को गोइ रही,
गिरितें, गरेतें, निज गोदतें उतारै ना ॥

—पद्माकर

दयावीर

(३)

पापी अजामिल पार कियो जेहि नाम लियो सुत ही को नरायन।
त्यों 'पद्माकर' लात लगे पर विप्रहू के पग चौगुने चायन ॥

को अस दीनदयाल भयो दसरत्थ के लाल से सूधे सुभायन।
दौरे गयंद उबारिबे कों, वाहन छोड़ि उबाहने पायन ॥

—पद्माकर

धर्मवीर

(४)

तृण के समान धन-धाम राज त्याग कर,
पाल्यो पितु बचन जो जानत जनैया है।
कहै 'पदमाकर' विवेक ही को बानो बीच
सोची सत्यवीर धीर धीरज धरैया है॥
सुमृति, पुराण, वेद, आगम कह्यौ जो पंथ,
आचरन सोई सुद्ध करम करैया है।
मोद मति मंदिर पुरंदर मही को धन्य,
धरम धुरन्धर हमारो रघुरैया है॥

—पद्माकर

करुण रस

प्रिय-मृत्यु का अप्रिय महा संवाद पाकर विषभरा।
चित्रस्थ-सी, निर्जीव-सी हो रह गई हत उत्तरा॥
संज्ञा रहित तत्काल ही फिर वह धरा पर गिर पड़ी।
उस समय मुर्छा भी अहो! हितकर हुई उसको बड़ी॥

× × ×

अपने जनो द्वारा उठा कर समर से लाये हुए।
व्रण-पूर्ण, निष्प्रभ और शोणित पंक से छाये हुए॥

प्राणेश-शव के निकट जाकर चरम दुख सहती हुई।
वह नव वधू फिर गिर पड़ी 'हा नाथ हा' कहती हुई॥

—मैथिलीशरण गुप्त

रौद्र रस

सबन के ऊपर ही ठाढ़ो रहिबे के जोग,
ताहि खड़ो कियो छ-हजारिन के नियरे।
जान गैर-मिसिल, गुसैलागुस्सा धारि उर
कीन्हो ना सलाम, ना वचन बोले सियरे॥
'भूखन' भनत, महावीर बलकन लाग्यो,
सारी पातसाही के उड़ाय गये जियरे।
तमकतें लाल मुख सिवा को निरखि भये
स्याह मुख नौरंग, सिपाह मुख पियरे॥

—भूषण

भयानक रस

लपट कराल ज्वाल-जाल-माल दुहूँ दिसि,
धूम अकुलाने, पहिचानै कौन काहि रे।
पानी को ललात, बिललात, जरे जात गात,
परे पाइमाल जात, भ्रात तू निबाहि रे॥
प्रिया तू पराहि, नाथ-नाथ तू पराहि, बाप
बाप तू पराहि, पूत पूत तू पराहि रे।

तुलसी, त्रिलोक लोग व्याकुल बिहाल कहैं—

लेहि, दससीस, अब बीस चख चाहि रे ॥

—तुलसीदास

वीभत्स रस

सिरपै बैठ्यो काग, आँख दोउ खात निकारत।

खींचत जीभहिं स्यार, अतिहि आनँद उर धारत॥

गिद्ध जाँघ कहँ खोदि-खोदि कै माँस उचारत।

स्वान अंगुरिन काटि-काटि कै खात विचारत॥

—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

अद्भुत रस

लीन्हों उखारि पहार बिसाल, चल्यो तेहि काल बिलंब न लायो।

मारुतनन्दन मारुत को, मनको खगराज को वेग लजायो॥

तीखी तुरा तुलसी कहतो पै हिये उपमाको समाउ न आयो।

मानो प्रतच्छ परब्बत की नभ-लीक लसी कपि यों धुकि धायो॥

—तुलसीदास

शान्त रस

तेरा साँई तुज्झ में ज्यों पुहुपन में बास।

कस्तूरी का मिरग ज्यों, फिर-फिर सूँघै घास॥

× × ×

माली आवत देखि कै, कलियाँ करी पुकार।

फूले फूले चुन लिए, काल्हि हमारी बार॥

—कबीर

वात्सल्य रस

मैं बचपन को बुला रही थी, बोल उठी बिटिया मेरी।
नन्दन-वन सी फूल उठी यह, छोटी-सी कुटिया मेरी ॥
'माँ ओ'—कह कह बुला रही थी, मिट्टी खाकर आई थी।
कुछ मुँह में कुछ लिए हाथ में, मुझे खिलाने आई थी ॥

× × ×

मैंने पूछा—यह क्या लाई? बोल उठी वह—'माँ, काओ,।
हुआ प्रफुल्लित हृदय खुशी से, मैंने कहा—तुम्हीं खाओ ॥
पाया बचपन मैंने फिर से, बचपन बेटी बन आया।
उसकी मंजुल मूर्ति देखकर, मुझ में नव जीवन आया ॥

—सुभद्राकुमारी चौहान

—: o :—

२—अलङ्कार

अलङ्कार कविता के भूषण कहे गये हैं। ये दो प्रकार के होते हैं— **शब्दालंकार** और **अर्थालंकार**। जहाँ केवल शब्दों के कारण पद योजना में चमत्कार आ जाता है, उसे शब्दालकार कहते हैं। ऐसे अलकारों में शब्द के बदले पर्यायवाची शब्द रख देने पर वह चमत्कार नष्ट हो जाता है। अर्थालकारों मे अर्थ के कारण चमत्कार होता है। शब्द बदल कर समानार्थक दूसरा शब्द रख देने पर भी उनका वह चमत्कार बना रहता है।

शब्दालकारों मे **अनुप्रास** मुख्य है और अर्थालकारों मे **उपमा**। सच पूछिये तो इन्ही से अन्य अलकारों का उद्भव हुआ। उक्ति में विलक्षणता लाने के लिये ही इनकी सृष्टि हुई। उपमा के द्वारा भाव स्पष्ट ही नहीं होते—वे रमणीय भी हो जाते हैं। अनुप्रास सिर्फ भाषा-सौन्दर्य के लिये ही प्रयुक्त नही होता किन्तु उससे कविता के मूलगत भाव ध्वनि-मात्र से स्पष्ट हो जाते हैं। सच यह है कि कितने ही कवियों ने केवल आडम्बर के लिए ही अनुप्रास का प्रयोग किया हैं, परन्तु इसी में उसकी सार्थकता नहीं है। जैसे रूप के सादृश्य से उपमा की सृष्टि होती है, वैसे ही शब्दों के सादृश्य से अनुप्रास की रचना होती है। शब्दों के मिलने से काव्य में एक अपूर्व सङ्गीत ध्वनि उत्पन्न होती है। **'दामिनी दमक सुरचाप की चमक श्याम** घटा की घमक अति घोर घनघोर ते' अनुप्रास की इस छटा में वर्षा की लीला का सादृश्य अवश्य है। चाहे

उपमा हो या अनुप्रास, उनकी सार्थकता तभी है जब वे भावों का अनुसरण करते हैं।

एक या अनेक अक्षरों के बार-बार आने से **अनुप्रास** अलंकार होता है जैसे 'तरनि तनूजा तट तमाल तरुवर बहु छाये'—इसमें त अक्षर पाँच बार आया है। 'सरल स्वाभाव राम महतारी, बोली वचन धीर धर भारी।' इस पद्य में न, म, व, ध, और र अक्षरों की पुनरावृति हुई है।

लाटानुप्रास में एक ही अर्थ में एक या एक से अधिक शब्दों की पुनरावृति होती है जैसे '**औरै** रस **औरै** रीति **औरै** राग **औरै** रंग **औरै** तन **औरै** मन **औरै** वन ह्वै गए।' यहाँ '**औरै**' शब्द एक ही अर्थ में कई बार आया है।

भिन्न भिन्न अर्थों में एक शब्द या शब्दांश की जब पुनरावृत्ति हो तब 'यमक' अलकार होता है, जैसे 'ऊँचे घोर **मंदर** के अन्दर रहन वारी ऊँचे घोर **मंदर** के अन्दर रहाती हैं' इस पदांश में 'मन्दर' शब्द दो बार आया है। एक स्थान पर उसका अर्थ है महल और दूसरे स्थान पर पर्वत। 'तोहि गंगा की **कछार में पछार छार** करि हौं'—इसमें 'छार' शब्द की तीन बार पुनरावृत्ति हुई है—दो बार तो वह 'कछार और 'पछार' का अंश होकर आया है और स्वयं निरर्थक है परन्तु तीसरी बार नष्ट करने के अर्थ में आया है।

जब एक ही शब्द का एक ही स्थान पर एक से अधिक अर्थ निकले, तब 'श्लेष' अलकार होता है। जैसे—

'मेरी' भव बाधा हरौ, राधानागरि सोय, जा तन की झाई परै श्याम **हरितदुति** होय।

यहाँ 'हरित दुति' के दो अर्थ हैं, एक अर्थ हरी कान्ति और दूसरा प्रसन्नता की चमक।

एक दूसरा उदाहरण है—'चिरजीवौ जोरी, जुरै, क्यों न सनेह गँभीर का घटि ए वृषभानुजा वे हलधर के वीर।'—इस दोहे में 'वृषभानुजा' के दो अर्थ हैं :—१ वृषभानु की पुत्री—(राधा) २ वृषभ की बहिन (गाय)। इसी प्रकार 'हलधर, के भी दो अर्थ हैं (१) बलराम (२) बैल।

उपमा में किसी वस्तु का सादृश्य किसी अन्य प्रसिद्ध वस्तु से बतलाया जाता है। उपमा में चार बातें पायी जाती हैं (१) **उपमेय** जिसका सादृश्य किसी अन्य वस्तु से बतलाया जाता है (२) **उपमान** जिसके साथ उपमेय की समानता प्रकट की जाती है। (३) **वाचक शब्द** जिसके द्वारा समानता प्रकट हो। (४) साधारण धर्म—वह विशेषता जो उपमेय और उपमान दोनों में पायी जावे। 'घन और भस्म विमुक्त भानु कृशानु सम शोभित नये, अज्ञातवास समाप्त कर जब प्रकट पाण्डव हो गये।' इसमें उपमेय पाण्डव हैं। उपमान भानु और कृशानु है। वाचक शब्द सम है। साधारण धर्म 'नये' है इसलिये यह उपमा अलंकार है।

रूपक अलंकार में उपमेय को उपमान के साथ एक रूपता बतलाई जाती है अर्थात् एक वस्तु का दूसरी वस्तु पर आरोप किया जाता है; जैसे 'उदित उदय गिरि-मञ्च पर रघुबर बाल-पतंग, बिकसे सन्त सरोज सम हरषे लोचन भृंग'—यहाँ मञ्च और उदयगिरि एक माने गए हैं उसी प्रकार रामचन्द्र बालसूर्य बना लिए गए हैं। सन्त सरोज मान लिए

गए हैं और लोचन भृङ्ग। इन सबमें एकरूपता मानी गई है अर्थात् एक वस्तु का दूसरी वस्तु पर आरोप किया गया है।

उत्प्रेक्षा में एक वस्तु में दूसरी वस्तु की सम्भावना की जाती है। 'मानो' तथा इसके समानार्थी शब्द इस अलकार के वाचकशब्द हैं, जैसे 'सोहत ओढ़े पीत पट श्याम सलौने गात, मौनि-नीनलम शैल पर आतप पर्‌यौ प्रभात'—यहाँ पीत पट (पीले कपड़ा) पहिने हुए श्रीकृष्णचन्द्र मे यह सम्भावना की गई है वे नील मनि-शैल (नीलाम के पहाड़) है जिस पर (आतप पर्‌यौ प्रभात)—प्रातःकाल की पीली धूप पड़ रही है।

अन्योक्ति अलंकार में किसी वस्तु का सीधा वर्णन न कर उसी के समान किसी अन्य वस्तु का ऐसा ढंग से वर्णन किया जाता है कि वर्णनीय वस्तु का बोध हो जाता है, जैसे 'सर सूखे पंछी उडे, औरहिं सरन समाहिं दीन मीन बिन पच्छ के, कहु रहीम कह जाहिं।'—यहाँ यथार्थ में उस श्रीमान् का वर्णन अभीष्ट है—जो कितने ही आश्रयहीन दीनों का एक मात्र आश्रय दाता है पर उसका सीधा वर्णन न कर तालाब और मछली के वर्णन द्वारा उसका बोध कराया गया है।

व्याजस्तुति और व्याजनिन्दा में निन्दा के बहाने स्तुति या स्तुति के बहाने निन्दा की जाती है, नीचे के पद्य में पद्मकार ने गंगा जी की निन्दा कर सचमुच उनकी प्रशंसा की है गंगा जी सभी स्नान करने वालों को महादेव जी के समान बना देती हैं :—

पापी एक जात हुतो गंगा के अन्हाइबे कौं,
तासों कहै कोऊ एक अधम अयान में।

जाहु जनि पंथी ! उन विपति विसेष होति,

मिलैगो महान कालकूट खान-पान मे ॥

कहै 'पद्माकर' भुजंगन बँधैंगे अंग,

संग में सुभारी भूत चलैंगे मसान में ।

कमर कसैंगे गज खाल तत्काल बिन,

अंबर फिरैगो तू दिगंबर-दिसान में ॥

निम्नलिखित चौपाइयों मे बन्दरों की प्रशंसा तो की गई है, प सचमुच वह उनकी निन्दा है :—

धन्य कीस जो निज प्रभु-काजा, जहँ-तहँ नाचहिं परिहरि लाजा ।

नाचि कूदि करि लोग रिझाई, परि-हित करत-करम निपुनाई ।

—:०:—

३—छन्द

छन्द कविता के अवयव कहे गए हैं। शब्दों की एक विशेष योजना से उसमें एक विशेष गति आ जाती है, एक विशेष प्रवाह आ जाता है; जिसके कारण उसमें एक विशेष प्रकार का आकर्षण हो जाता है। साधारण बोल-चाल में हम लोग शब्दों का जिस प्रकार प्रयोग करते हैं; ठीक उसी तरह का प्रयोग छन्दों में नही किया जाता। उसमें संगीत की सी मधुरता लाने के लिए शब्दों के क्रम में हेर-फेर कर दिया जाता है। उसको पद्य भी कहते हैं। 'छन्द' पद्य का पर्यायवाची शब्द है।

हिन्दी में दो प्रकार के छन्द होते हैं। एक मात्रिक और दूसरे वर्णिक-मात्रिक छन्दों मे मात्राओं का विचार किया जाता है और वर्णिक छन्दों मे वर्णों का। मात्रा-भेद से अक्षरों के दो प्रकार होते हैं—एक ह्रस्व और दूसरा दीर्घ। ह्रस्व वर्णों की एक मात्रा मानी जाती और दीर्घ की दो। सानुस्वार और सविसर्ग-वर्ण दीर्घ माने जाते हैं। संयुक्ताक्षर का पूर्व वर्ण भी दीर्घ माना जाता है।

वर्णिक छन्दों मे लघु-गुरु का विचार किया जाता है। उनमें तीन-तीन वर्णों के आठ गण माने गये हैं।

तीन गुरु को मगण कहते हैं—जैसे भंडारी।

तीन लघु को नगण कहते हैं—जैसे भरत।

आदि गुरु को भगण कहते हैं—जैसे भारत।

आदि लघु को यगण कहते हैं—जैसे भरोसा।

मध्य गुरु को जगण कहते हैं—जैसे भविष्य।

मध्य लघु को रगण कहते हैं—जैसे भारती।

अन्त गुरु को सगण कहते हैं—जैसे भगनी।

अन्त लघु को तगण कहते हैं—जैसे भडार।

मात्रिक छन्दों मे चौपाई (१५ मात्रा) चौबोला (१५ मात्रा) चौपाई (१६ मात्रा) श्रृङ्गार (१६ मात्रा), पीयूष वर्ष (१६ मात्रा), रोला (२४ मात्रा) गीतिका (२६ मात्रा), हरगीतिका (२८ मात्रा), सार (२८ मात्रा) ताटङ्क, (३० मात्रा), वीर (३१ मात्रा) सवाई (३२ मात्रा), प्रसाद (३२ मात्रा) ये छन्द प्रसिद्ध हैं।

अर्द्धसम मात्रिक छन्दो मे दोहा (१३+११)), सोरठा, ११+१३ उल्लाला (१५+१३) रुचिरा (१६+१४) ये छन्द प्रसिद्ध हैं।

दोहा और रोला मिला देने से कुण्डलिया छन्द बन जाता है। इसी प्रकार रोला और उल्लाला मिला देने से छप्पय छन्द बन जाता है।

मात्रिक छन्दों में मात्राएँ ठीक रहने पर भी उनमें यति और गति का विचार करना पड़ता है। छन्द पढ़ते समय जहाँ जहाँ क्षणभर विराम देना पड़ता है अर्थात् कुछ रुकना पड़ता है, उन स्थानों को गति का स्थान कहते हैं। इसी प्रकार छन्द के पढने की एक लय होती है। इसी को यति कहते हैं। उस गति के बिना छन्द नहीं बन सकता। यह केवल अभ्यास से जानी जा सकती है।

वर्णिक छन्दों में मत्तगयन्द सवैया में सात भगण और दो गुरु होते हैं। मालिनी में नगण, नगण, मगण, यगण, और यगण होते हैं। द्रुतविलम्बित में नगण, भगण, भगण और रगण होते हैं। शिखरिणी में

यगण, मगण, नगण, सगण, भगण और लघु गुरु होते हैं। मन्दाक्रान्ता में भगण, भगण, नगण, नगण तगण और दो गुरु होते हैं। शार्दूल-विक्रीडित में मगण, सगण, जगण, सगण, तगण, तगण और एक गुरु होता है। मनहरण कवित्त में ३१ अक्षर होते हैं। स्रग्धरा में मगण, रगण, भगण, नगण, यगण, यगण और यगण होते हैं।

छन्दों के उदाहरण

दोहा

दोहे के पहले और तीसरे चरणों में १३ मात्राएँ होती हैं और दूसरे और चौथे चरणों में ११ मात्राएँ। पहले और तीसरे चरणों में 'जगण' नहीं होना चाहिए तथा अन्त में गुरु-लघु अवश्य होना चाहिए—

कोऊ कोरिक संग्रहौ, कोऊ लाख हजार।
मो संपति जदुपति सदा, विपति-विदारन हार॥

सोरठा

सोरठा दोहे के ठीक विपरीत होता है :—

शंकर चाप जहाज, सागर-रघुबर बाहु बल।
बूड़े सकल समाज, चढ़े जो प्रथमहिं मोह बस॥

चौपाई

चौपाई के प्रत्येक पद में १६ मात्राएँ होती हैं। अन्त में गुरु लघु नहीं आना चाहिए—

गिरा अलिन मुखपंकज रोकी, प्रगट न लाज निशा अवलोकी।
लोचन जलु रहु लोचन-कोना, जैसे परम कृपन कर सोना॥

रोला

रोला के प्रत्येक चरण मे ११ और १३ के विश्राम से २४ मात्राएँ होती हैं—

हरहरात इक दिसि, पीपर कौ पेड़ पुरातन।
लटकत जामैं घट घने माटी के बासन॥
बरषा ऋतु के काज, और हूँ लगत भयानक।
सरिता बहति सबेग, करारे गिरत अचानक॥

कुण्डलिया

कुण्डलिया में एक दोहा और उसके बाद चार छन्दो का एक रोला छन्द जोड़ दिया जाता है :—

बीती ताहिं बिसार दे आगे की सुधि लेइ।
जो बनि आवै सहज में, तही में चित देइ॥
ताही में चित्त देइ, बात जोई बनि आवै।
दुर्जन हँसे न कोई, चित्त मे खेद न पावै॥
कह गिरधर कविराय, यहै करु मन परतीती।
आगे की सुधि लेइ, समुझि बीती सो बीती॥

छप्पय

छप्पय में चार पद के रोला के बाद दो पद २८ मात्राओं के अथवा २६ मात्राओं के जोड़ दिये जाते हैं, जिन्हे उल्लाल और उल्लाला कहते हैं।

नीलाम्बर परिधान हरित-पट पर सुन्दर है।
सूर्य-चंद्र युग मुकुट, मेखला रत्नाकर है॥

नदियाँ प्रेम - प्रवाह, फूल तारे मंडन हैं।
वंदीजन खग-वृन्द, शेष-फन सिंहासन हैं॥
करते अभिषेक पयोद हैं, बलिहारी इस वेश की।
हे मातृभूमि! तू सत्य ही, सगुण मूर्ति सर्वेश की॥

गीतिका

गीतिका और हरिगीतिका में केवल दो मात्राओं का भेद है। गीतिका में १४, १२ के विराम से २६ मात्राएँ होती हैं और हरिगीतिका में १६, १२ विराम से २८ मात्राएँ होती हैं। हरिगीतिका की प्रथम मात्रा हटा देने से गीतिका छन्द बन जाता है। इन दोनों के अन्त में लघु गुरु अवश्य होना चाहिये। नीचे हरिगीतिका छन्द का उदाहरण दिया जाता है—

क्या-क्या न जाने नीच निर्दय, कौरवों ने है किया।
था शोभनों में पाण्डवों को, विष उन्होंने ही दिया॥
सो सन्धि करने के समय, इस विषम विष की बात को।
मुझपर कृपा करके उचित है, सोच लेना तात को॥

सार

१६ और १२ के विश्राम से २८ मात्राओं का छन्द सार कहलाता है:—

मध्यनिशा, निर्मल निरभ्र नभ, दिशा-विराग विहीना।
विलसित था अम्बर के ऊपर, अद्भुत एक नगीना॥
उसकी विशद प्रभा पर निर्भर, तृणलतिका द्रुमदल में।
करती थी विश्राम परम अविराम निशीथ-कमल में॥

ताटंक

१६, १४ के विराम से ३० मात्राओं का ताटंक छन्द होता है :—

माता के निःस्वार्थ नेह मे, प्रेम मयी की माया में।
बालक के कोमल अधरों पर, मधुर हास्य की छाया मे॥
पतिव्रता नारी के बल में, वृद्धों के लोलुप मन मे।
होनहार युवकों के निर्मल, ब्रह्मचर्यमय यौवन मे॥

कलनाद

इस छन्द के प्रत्येक चरण मे १४, १४ के विराम से २८ मात्राएँ होती हैं :—

क्या सोच रही बाले !
बैठी तू शून्य सदन मे।
किसकी सुधि से आकुल-सी,
तू हो उठती है मन में॥

शृंगार

शृङ्गार १६ मात्राओ का होता है। अन्त मे गुरु लघु या लघु गुरु दोनों आते हैं :—

स्वर्ण सुख श्री, सौरभ मे भोर।
विश्व को देती है जब बोर।
विहग-कुल की कल-कण्ठ हिलोर।
मिला देती भू नभ के छोर।

सरसी

सरसी का दूसरा नाम हरिपद भी है। १६, ११ के विराम से यह २७ मात्राओं का छन्द है अन्त में गुरु लघु होता है :—

रंगभूमि के राजभवन में, राजविभव में लीन।
उच्च अलंकृत सिंहासन पर, नृपवर थे आसीन॥
झलमल झलमल वस्त्राभूषण, गौर कान्ति अवदात,
दीपों के उज्ज्वल प्रकाश में, दमक रहा था गात।

कवित्त

१६, १५ के विराम से ३१ अक्षरों का घनाक्षरी छन्द होता है, इसे कवित्त कहते हैं। पद्माकर और भूषण के कवित्त प्रसिद्ध हैं :—

वर्णिक छन्द

नीचे कुछ वर्णिक छन्दों के उदाहरण दिए जाते हैं :—

तोटक

(स स स स)

जय राम सदा सुख धाम हरे।
रघुनायक सायक चाप धरे॥
भव-वारण-दारण सिंह प्रभो
गुण सागर नागर-नाथ विभो॥

मालिनी

(न न म य य)

प्रिय पति वह मेरा प्राण प्यारा कहाँ है?
दुख जल निधि डूबी का सहारा कहाँ है?

लख मुख जिसका मैं आज लों जी सकी हूँ ?
वह हृदय हमारा नयन तारा कहाँ है ?

मन्दाक्रान्ता

(म भ न त त ग ग)

ये आँखें है जिधर फिरतीं चाहती श्याम को हैं।
कानों को भी मुरलि रव, आज भी लौ लगी है।
कोई भी मेरे हृदय तल को पैठ के जो विलौके।
तो पावेगा ललित उसमें, कान्ति प्यारी उन्हीं की।

शिखरणी

(य न भ ल म ग)

अनूठी आभा के सरस-सुषमा से सुरस से।
बना जो देती थी वहु गुणमयी भू विपिन की॥
निराले फूलों की विविध दल वाली अनुपमा।
जड़ी बूटी नाना बहु धलवती थी विलसती॥

स्रग्धरा

(म र भ न य य य)

हे दुर्गे विश्वधात्री, जननि, भगवती हे शिवे,
हे भवानी।
आर्ये, कल्याणि, वाणी, भव-भय हरणी चण्डि
त्रैलोक्य रानी!
पाके भी हाय! माना, हम सब तुम सी,
ईश्वरी शक्ति शाली।

होंगे ससार मे क्या, न अब फिर सुखी
तोड़ दुखार्तिजाली ।

सवैया

सवैया के कई भेद हैं। मदिरा में सात भगण और एक गुरु होते हैं। मत्तगयन्द में ७ भगण और दो गुरु और अरसात सवैया में ७ भगण और एक रगण होते हैं। अरसात का उदाहरण नीचे दिया जाता है :—

जा थल कीन्हे विहार अनेकन, ता थल काँकरी बैठि
चुन्यों करैं ।
जा रसना सों करी बहु बातन, ता रसना सों
चरित्र गुन्यों करैं ॥
आलम जौन से कुंजन मे करी केलि, तहाँ अब
सीस धुन्यों करैं ।
नैननि में जो सदा रहते, तिनकी अब कान
कहानी सुन्यों करैं ॥

आधुनिक छन्दों के विषय में

कुछ समय से हिन्दी में गीतों अथवा पदो और मुक्तक छन्दों का प्रचार बढ रहा है। गीतों के पहले चरण मे जितनी मात्राएँ रहती हैं, प्रायः उनके अवशिष्ट चरणों में उसकी दूनी मात्राएँ रहती है। पर ऐसा कोई नियम नहीं है। कवि अपनी इच्छा के अनुसार जितनी मात्राएँ चाहते हैं रखते हैं। अधिकांश गीतों के प्रथम चरण में चौदह मात्राएँ

होती हैं और शेष चरणों में २८ मात्रा का सार छन्द होता है। कितने ही गीतों में कई भिन्न भिन्न छन्दों का मेल है।

मुक्तक छन्दों के लिए छन्द शास्त्र का कोई बन्धन नहीं है—न अनुप्रासों का और न किसी विशेष प्रकार के छन्द की गति का, तो भी उनमें एक विशेष लय रहती है जिसके कारण वे गद्य से सर्वथा भिन्न हैं। निराला जी ने ऐसे छन्दों की रचना में विशेष प्रसिद्धि पाई है। पन्त, प्रसाद, महादेवी वर्मा और रामकुमार वर्मा के गीत विशेष प्रसिद्ध हैं। आधुनिक युग के अन्य कवियों ने भी भिन्न-भिन्न छन्दों के मेल से नये छन्द की सृष्टि की है।